BAJY- 302

मेलापक एवं विवाह मुहूर्त्त विचार

ज्योतिष विभाग - मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ नन्दन कुमार तिवारी
अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी , नैनीताल

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी	1	1,2,3,4,5,6
डॉ0 जितेन्द्र दूबे **प्रवक्ता, ज्योतिष विभाग** श्री मती लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय , बरून्दनी भिलवाड़ा , राजस्थान	2	1,2,3,4,5,6
डॉ नन्दन कुमार तिवारी अकादमिक एसोसिएट , ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	3	1,2,3,4

प्रकाशन वर्ष : 2014 ***ISBN No. – 978-93-84632-82-3***

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
मुद्रक : उत्तरायण प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल – उत्तराखण्ड

अनुक्रम

बी0ए0 ज्योतिष तृतीय वर्ष

द्वितीय पत्र

मेलापक एवं विवाह मुहूर्त्त विचार

खण्ड – 1

मेलापक

इकाई – 1 मेलापक का उद्देश्य

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई 'मेलापक का उद्देश्य' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । भारतीय सनातन परम्परा में 'विवाह' मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है । ज्योतिष शास्त्र में आचार्यों द्वारा विवाह हेतु आरम्भ में मेलापक का ज्ञान बताया गया है ।

मेलापक विवाह हेतु बताया गया एक महत्वपूर्ण इकाई है । मेलापक द्वारा विवाह का निर्णय किया जाता है।

इस इकाई में आप मेलापक का उद्देश्य को समझेगें साथ ही उसे भली भॉति समझने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ मेलापक क्या है ।
- ❖ मेलापक का प्रयोजन क्या है ।
- ❖ मेलापक का उद्देश्य एवं महत्व क्या है ।
- ❖ मेलापक का मानव जीवन में क्या उपयोग है ।
- ❖ ज्योतिषक्त मेलापक में क्या - क्या होता है।

1.3 मेलापक उद्देश्य

ज्योतिष शास्त्रानुसार मेलापक का उद्देश्य है – सुखद दाम्पत्य की सतत समृद्धि तथा वंश - लतिका की निरन्तरता, निरोगता, प्रबुद्धता, प्रतापी संतति की प्राप्ति, हर्षोल्लास, उमंग और आनन्द की उत्तम उपलब्धि की सर्वाधिक सशक्त प्रविधि तथा दो अपरिचितों के मिलन के साथ – साथ उनका वैवाहिक सुखमय जीवन आदि ... इत्यादि ।

काल वीथिका से अग्रसरित होते विवाह की परिवर्तित मान्यताओं, मापदण्डों, मानसिकताओं के कारण मेलापक की उपयोगिता एवं समुपयुक्तता में अभिवृद्धि हुई है ।

विवाह, जीवन के ऋतुचक्र में सुरभित माधुर्य का सूत्रपात करता है । धर्म – धरातल पर आधारित काम के प्रत्यूषी स्वप्नों का साकार स्वरूप, विवाह संस्कार है जो जीवन को, मधुर संगीत तथा प्रेम के इन्द्रधनुषी रंगों से चित्रित कर देता है । शक्ति और सौन्दर्य के अहंभाव का तिरोभाव ही वर – कन्या को दाम्पत्य सुख से आलिंगित करता है । विवाह – जीवन का एक घटनाक्रम मात्र नहीं है बल्कि प्रेम

के महासागर में सर्वाधिक जीवनोपयोगी संस्कार है जिसे अनादि काल से समाज एवं विधान की मान्यता तो प्राप्त है, साथ ही समस्त वेदों , उपनिषदों एवं पुराणों आदि ने भी 'विवाह संस्कार' को जीवन की पूर्णता हेतु अनिवार्य माना है।

मानव मन को विचलित कर देने वाली यह कैसी विडम्बना है कि शुष्क भौतिक धरातल पर मानव विजय की जीवन्त ध्वजा फहराता जा रहा है किन्तु प्रेमिल भावना के व्योम पर पराजय की कलंक कथाओं, व्यथाओं की कुत्सित घटनाओं को चित्रित करता जा रहा है।

बाह्य जगत में निरन्तर प्रगति, समृद्धि, ऐश्वर्य, वैभव,यश , कीर्ति , हर्ष, उमंग, उल्लास एवं उत्साह से ओतप्रोत मानव, आन्तरिक स्तर पर एकान्त, अपरिसीम – निर्वासन की स्थिति प्राप्त कर रहा है। असंतुलित एवं अशान्त आन्तरिक मन: स्थिति, दाम्पत्य जीवन को भी विचलित करके अस्थिरता की ओर अग्रसर करता है। कभी वैवाहिक जीवन का परम पावन एवं प्रीति परिपूरित पवित्र परिणय पथ, दिग्भ्रमित हो जाता है तो कभी स्वाभिमान, मिथ्याभिमान में रूपान्तरित होकर दाम्पत्य जीवन की मधुरता प्रेम और विश्वास के समस्त स्वप्नों को ध्वस्त करता है।

उपर्युक्त असंतुलित, अस्थिर, दाम्पत्य जीवन की समस्त संभावनाओं को निरस्त कर सुखमय वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हुए हर्ष – उल्लास और आनन्द के इन्द्रधनुषी रंगों के सुरभित आनंद से संतृप्त हो जाने हेतु वर – वधू के जन्मांगों का, विवाह सम्बन्धी उपयुक्त मिलान, अति आवश्यक एवं अनिवार्य है।

ज्योतिष विज्ञान के अनेक मूर्धन्य विद्वानों ने नक्षत्र मेलापक की वर्तमान परम्परा की प्रामाणिकता पर आशंका तो व्यक्त की है परन्तु नक्षत्र मेलापक के प्रामाणिक प्रावधान का उल्लेख करने के दायित्व से विमुख रहे है।

सम्प्रति, वैवाहिक जीवन में निरन्तर घटित होने वाली विरूपता, विषमता तथा विकृति के विस्तार को अवरूद्ध करके निरस्त व ध्वस्त करने हेतु सटीक मेलापक की आवश्यकता असंदिग्ध है।

वर - वधू के जन्मांगों का मिलान जितना तर्कसम्मत, शास्त्रसम्मत एवं सुदृढ़ होगा, दाम्पत्य जीवन उतना ही उल्लासपूर्ण, समृद्धिशाली, आनन्ददायक, हर्षपूर्ण एवं स्थायी होगा।

अत: उपर्युक्त कारणों से मेलापक का उद्देश्य प्रासांगिक है। आत्मीय सम्बन्धों की सरसता हेतु पति – पत्नी के मध्य आत्मिक एवं सहज सम्बन्ध आवश्यक है। आत्मिक सम्बन्धों की प्रगाढ़ता का अभाव दोनों के मध्य विसंगतियॉ तथा विषमताऍ उत्पन्न कर देता है जो पारिवारिक विघटन का हेतु बन जाता है। वर्तमान में असुरक्षा का भाव तलस्पर्शी चिन्ता का विषय है। इस स्थिति में दाम्पत्य जीवन के प्रति शंका स्वाभाविक है।

मेलापक सम्बन्धी विज्ञान एवं गूढ़ रहस्य तथा गम्भीर चिन्तन के समुचित,सम्यक् एवं सूक्ष्मतर ज्ञान से नामधारी ज्योतिर्विद प्राय: अपरिचित हैं । उन्हें इस विषय से सम्बन्धित इतना ही ज्ञात है कि अष्टकूट मिलान अनुकूल होना चाहिये,तथा मंगली दोष संतुलित होना भी अनिवार्य है, परन्तु मंगली दोष के समुचित ज्ञान के प्रति उनकी अनभिज्ञता के कारण, कितने ही जन्मांगों का अशुद्ध मिलान हो जाता है जिसका प्रतिफल वर – वधू को भुगतना पड़ता है । सम्प्रति 'ज्योतिष विज्ञान' का व्यवसायीकरण भी आम जनमानस को भुक्त भोगी बनाने का काम तेजी से कर रहा है । शायद इसलिए भी दिनानुदिन लोगों की आस्था इस विषय से उठते जा रही है ।

जिन दम्पतियों का परिणय, जन्मांगों के मिलान की शास्त्रसंगत विधि के अभाव में सम्पन्न हुआ है, यदि वे दम्पत्ति सुखी, संतुष्ट, सम्पन्न, समृद्ध, सुगठित एवं सरस जीवन व्यतीत कर रहे हैं तो क्या कारण है ?

दूसरे वे लोग हैं, जिनका विवाह,आचार्यों द्वारा वर – वधू के जन्मांगों के विधिवत् मिलान द्वारा सम्पन्न हुआ है, उनका वैवाहिक जीवन विषादपूर्ण, विघटनकारी और विसंगतियों से आच्छादित क्यों हैं ? सम्यक् रूप से जन्मांगों के मिलान के उपरान्त भी कलह,अभाव, असांमजस्य, अस्थिरता, अलगाव, अनर्गल आरोपों से निरन्तर अभिशप्त क्यों है, तथा सुखमय जीवन व्यतीत करने से सम्बन्धित समस्त प्रयासों की असफलता से आक्रान्त क्यों है ?

उल्लेखनीय है कि जन्मांगों का सटीक नक्षत्र – मिलान ही अन्तिम निदान नहीं है । योग्य एवं विद्वान ज्योतिर्विदों द्वारा जन्मांगों के शुद्ध एवं सशक्त मिलान के उपरान्त भी दाम्पत्य जीवन में हर्षोल्लास अथवा चिन्ता, अवसाद, विषमता से सम्बन्धित व्याकृतियॉ , जन्मांगों में विवाह सम्बन्धी शुभाशुभ योगों पर निर्भर करता है । यदि जन्मांग में पार्थक्य अथवा वैधव्य का ग्रहयोग विद्यमान है, तो जन्मांगों के विधिवत् मिलान के पश्चात् , पार्थक्य या वैधव्य की संभावना पूरी तरह विनष्ट हो जायेगी, यह समझना भ्रान्ति है । जिन जन्मांगों में विघटनकारी स्थितियॉ प्रदर्शित हो रही है, उनके जन्मांगों के मिलान से अशुभता में न्यूनता अवश्य आ जाती है । यदि उपयुक्त मुहूर्त्त में विवाह किया जाय तथा अखंडित आस्था के साथ अनुकूल परिहार का भी आश्रय लिया जाय, तो पार्थक्य, विषादपूर्ण दाम्पत्य जीवन तथा वैधव्य से रक्षा सम्भव है ।

वर कन्या के जन्मांग के मिलान की प्रचलित प्रविधि के ज्ञान का अभाव, उपयुक्त मेलापक के उपरान्त भी दाम्पत्य जीवन में विकृति उत्पन्न कर सकती है । इसका वास्तविक कारण जन्मांगों की परस्पर आनुकूल्य से सम्बन्धित सूत्रों के प्रति अज्ञानता ही है । मात्र अष्टकूट का परस्पर साम्य नाड़ी दोष की अनुपस्थिति तथा मंगली दोष का संतुलन ही पर्याप्त नहीं है ।

वर – कन्याके जन्मांगों के मिलान से पूर्व उनके जन्मांगों का पृथक् अवलोकन, विश्लेषण भी विचारणीय है। दाम्पत्य सुख से सम्बन्धित समग्र भावों का सम्यक् विवेचन करने के उपरान्त ही आनुकूल्य की दिशा की ओर अग्रसर होना उपयुक्त है। सम्भव है कि वर – कन्या दोनों के ही सुखद वैवाहिक जीवन का संकेत उनके जन्मांगों में परिलक्षित हो रहा हो परन्तु परस्पर विवाह होने से विघटनकारी स्थितियों का निर्माण हो जाय। उदाहरणत: सिंह राशि में जन्मी कन्या का विवाह यदि कुम्भ राशि में जन्म लेने वाले वर के साथ सम्पन्न हो तो विवाह के पश्चात् वर – कन्या में किसी एक का निधन अथवा पार्थक्य की पुष्टि सम्भव है।

वर – कन्या का वैवाहिक जीवन सुख समृद्धि से परिपूर्ण हो, इसके लिए ज्योतिष शास्त्र ने मेलापक का ज्ञान बतलाया है। हिन्दू वैवाहिक परम्परा एवं मान्यता के अनुसार,वर –कन्या की जन्मकुण्डली का सम्यक् मिलान करना चाहिए। यदि दोनों की जन्मकुण्डलियों के बीच कोई दोष अथवा विरोध पाया जाय तो उसका परिहार तथा निवारण करके शुद्ध तथा शुभ मुहूर्त्त में विवाह करना चाहिए।

निर्दिष्ट ज्योतिषीय विधानों के आधार पर, वर – कन्या की कुण्डलियों के मिलान को ही ज्योतिषियों ने मेलापक की संज्ञा दी है। जिसका उद्देश्य पूर्व में कह दिया गया है।

मेलापक के आधार पर यह निर्धारित तथा सुनिश्चित किया जाता है कि विवाहोपरान्त वर – कन्या के बीच कैसी मैत्र, सामंजस्य तथा समृद्धि रहेगी। विवाह से पूर्व , भावी वैवाहिक जीवन में मेलापक द्वारा पूर्वानुमान करना, एक दुष्कर ज्योतिषीय प्रक्रिया है जिसका शास्त्रसंगत विवेचन आगे की इकाईयों में विस्तृत रूप में किया जायेगा।

अभ्यास प्रश्न

१. मेलापक का उद्देश्य है –

   क. तनाव पूर्ण दाम्पत्य जीवन

   ख. सन्तति क्षय

   ग. सुखी दाम्पत्य जीवन

   घ. मानसिक अशान्ति

२. आश्रमों में प्रमुख है –

   क. गृहस्थाश्रम ख. ब्रह्मचर्य आश्रम ग. वाणप्रस्थ आश्रम घ. सन्यास आश्रम

३. मेलापक विचार किया जाता है –

   क. विवाह के पूर्व ख. विवाह के पश्चात् ग. विवाह के समय घ. कोई नहीं

४. 'भार्या' का अर्थ है –

क. पति ख. पत्नी ग. पुत्र घ. भाई

५. आचार्य मनु ने कितने प्रकार के विवाह को बतलाया है –

क. ५ ख. ६ ग. ७ घ. ८

आचार्य मनु के अनुसार जन्म से मरण तक मनुष्य के लिए ४ आश्रमों का विभाजन किया है। जिनमें ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम का स्थान आता है – ''आश्रमादारश्रमं गच्छेदेष धर्म: सनातन: ।'' सनातन धर्म में गृहस्थाश्रम की विशेषता सर्वोपरि है। गृहस्थाश्रम की सफलता सहधर्मिणी के बिना संभव नहीं है तथा पुत्र के बिना व्यक्ति को सद्गति की प्राप्ति नहीं होती है – 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' तथा च 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गं नैव च नैव च' इन वाक्यों से आत्मसुखादि –देव - पितरों के स्वर्गादि सुख के कारण पुत्र की उत्पत्ति से ही होती है जो विवाह के बिना नहीं हो सकती। यही विवाह की उपादेयता है। विवाह वासना पूर्ति के लिए ही नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य गृहस्थाश्रम की रक्षा तथा सत्पुत्र प्राप्ति की कामना से ही है।

आचार्य मनु ने ८ प्रकार के विवाह को बताया है, जिनमें - ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, ये ४ अनुकूल समय में शास्त्रोक्त विधि से होते हैं तथा आसुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पिशाच ये ४ प्रकार के अवसारानुकूल होते है।

विवाह के पूर्व सर्वप्रथम वर – कन्या का मेलापक विचार होता है, अर्थात् विवाह की प्रथम सीढ़ी मेलापक ही है ।

विवाह प्रयोजन -

भार्या त्रिवर्ग करणं शुभशीलयुक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्या: ।
तस्माद्विवाहसमये परिचिन्त्यते हि
तन्निघ्नामुपगता सुतशीलधर्मा: ।।

सुन्दर स्वभाव वाली स्त्री अर्थ,धर्म, काम इन तीनों वर्गों को देती है। परन्तु स्त्री का उत्तम स्वभाव विवाह के लग्नवश होता है। जिससे पुत्र, स्वभाव, एवं धर्म विवाह लग्न के अधीन होते हैं। इसिलए विवाह समय का विचार किया जाता है।

विशेष - किसी भी कार्य में शुभ समय जनित अपूर्व फल प्राप्ति जन्मान्तरीय दुर्गुणों को नष्ट करता है। अत: प्राक्तन दुष्कृतियों के शमनार्थ निर्विघ्न कार्य पूर्ति हेतु शुभ समय की प्रधानता होती है। विवाह का मूलाधार मेलापक से आरम्भ होता है, अत: यहॉ मेलापक के आधार की चर्चा करते है -

मेलापक का आधार –

फलित ज्योतिष में प्रमुखत: जन्मलग्न तथा चन्द्रलग्न की प्रधानता होती है अथवा यह कहें कि जन्मराशि ही मेलापक का मुख्याधार है। चन्द्रलग्न अर्थात् जन्मकाल के चन्द्रमा की नक्षत्रस्थिति के आधार पर मेलापक सम्बन्धी निर्णय लिये जाते हैं। जहॉ पर वर – कन्या की कुण्डलियॉ सुलभ नहीं है और वांछित सूचना के अभाव में जन्मलग्न का निर्माण सम्भव नहीं है वहॉ पर, जातक के प्रचलित नाम के प्रथम अक्षर को आधार मानकर जन्मलग्न तथा जन्मनक्षत्र निर्धारित किया जाता है। तब मेलापक के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है। यह एक सामान्य आधार है , यह कोई वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत आधार नहीं होता है। यदि वर – कन्या की वास्तविक जन्मराशि और जन्मनक्षत्र उपलब्ध नहीं है तो अन्य किसी आधार पर, मेलापक का कार्य करना उचित एवं हितकर नही हो सकता है। इसी प्रकार ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म लेने वाली कन्या का विवाह यदि ज्येष्ठ पुत्र अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्में युवक के साथ, ज्येष्ठ मास में सम्पन्न हो तो विध्वंश अपरिहार्य हो जाता है।

यदि किसी वर कुण्डली में अल्पायु योग हो और प्रबल मारकेश की दशा आने वाली हो, क्रूर ग्रह केन्द्र में हो, लग्न और लग्नेश निर्बल हो तो ऐसे वर की कुण्डली से कन्या की कुण्डली यदि आप कन्या की तरफ से मिला रहे हैं तो सर्वप्रथम यह देखना चाहिये कि जिस वर का जन्म पत्री आप देख रहे हो वह दीर्घायु है या नहीं। यदि आप वर की ओर से जन्म कुण्डली मिला रहे हैं तो यह देखना चाहिये कि जिस कन्या की जन्म कुण्डली आप देख रहे हो वह विष – कन्या तो नहीं है। निम्नलिखित योगों में विष – कन्या उत्पन्न होती है –

1. द्वितीया तिथि, रविवार और शतभिषा नक्षत्र या आश्लेषा नक्षत्र।
2. द्वादशी तिथि, रविवार, कृत्तिका, विशाखा या शतभिषा नक्षत्र।
3. सप्तमी तिथि, मंगलवार और आश्लेषा, शतभिषा या विशाखा नक्षत्र।
4. द्वादशी तिथि, मंगलवार, शतभिषा नक्षत्र।
5. द्वितीया तिथि, शनिवार, आश्लेषा नक्षत्र।
6. सप्तमी तिथि, शनिवार, कृत्तिका नक्षत्र।
7. द्वादशी तिथि, शनिवार, कृत्तिका नक्षत्र।

ग्रहों से विष – कन्या योग -

1. कुण्डली में छठें स्थान में एक पापग्रह और दो सौम्य ग्रह होते हों तो।
2. लग्न में शनि, पंचम में सूर्य और नवम में मंगल हो तो।
3. दो पाप ग्रह छठे स्थान में, एक पापग्रह तथा लग्न में दो शुभ ग्रह हो तो ।

इस प्रकार मेलापक का उद्देश्य मुख्य रूप से वर – कन्या के दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाना है। साथ ही दोनों का वैवाहिक जीवन सुचारू रूप से चल सके, इसके लिये मार्गदर्शक का कार्य करता है। सर्वविदित है कि मानव जीवन में सुख दु:ख , लाभ – हानि होते ही रहता है, तथापि ज्योतिष शास्त्र पथ प्रदर्शक का कार्य करते हुये जीवन को सही दिशा प्रदान करने का कार्य करता है।

विष कन्या दोष का परिहार –

विष कन्या योग में उत्पन्न लड़का व लड़की के लिए शांति करनी चाहिये और यदि कन्या में मंगली दोष या विष - कन्या दोष अधिक हो तो ऐसे वर से विवाह करें जिसकी जन्म कुण्डली में दीर्घायु योग हो और मंगली दोष अधिक हो। ऐसा होने से कन्या का मंगली दोष कम हो जाता है। यदि कन्या की जन्म कुण्डली में विष – कन्या दोष या वैधव्य दोष हो किन्तु जन्मलग्न या चन्द्रलग्न से सप्तम स्थान में सप्तमेश या शुभग्रह हो तो विषकन्या - जनित दोष तथा वैधव्य दोष दूर करते है – यथा

लग्नाद् विधोर्वा यदि जन्मकाले
शुभग्रहो वा मदनाधिपश्च ।
द्यूनस्थितो हन्त्यनपत्य दोषं
वैधव्य दोषं च विषांगनाख्यम् ।।

यदि सप्तमेश बलवान शुभ स्थान में स्थित हो और सप्तम भाव पर शुभग्रहों की, विशेषकर बलवान् वृहस्पति की विशेष दृष्टि हो तो अन्य दोषों की निवृत्ति करते हैं।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिष शास्त्रानुसार मेलापक का उद्देश्य है – सुखद दाम्पत्य की सतत समृद्धि तथा वंश लतिका की निरन्तरता, निरोगता, प्रबुद्धता, प्रतापी संतति की प्राप्ति, हर्षोल्लास, उमंग और आनन्द की उत्तम उपलब्धि की सर्वाधिक सशक्त प्रविधि तथा दो अपरिचितों के मिलन के साथ – साथ उनका वैवाहिक सुखमय जीवन आदि ... इत्यादि । काल वीथिका से अग्रसरित होते विवाह की परिवर्तित मान्यताओं, मापदण्डों, मानसिकताओं के कारण मेलापक की उपयोगिता एवं समुपयुक्तता में अभिवृद्धि हुई है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

शास्त्रानुसार – शास्त्र के अनुसार
समृद्धि- उत्तरोत्तर वृद्धि
वंशलतिका – वंश की वृद्धि

समुपयुक्तता - बराबर रूप से उपयुक्त

सर्वाधिक - सबसे अधिक

जीवनोपयोगी - जीवन में उपयोगी

दिग्भ्रमित - सही रास्ते से भटक जाना

मिथ्याभिमान – झूठा अहंकार

उल्लासपूर्ण – खुशी से भर जाना

समृद्धशाली – सुख वैभव से सम्पन्न

आत्मिक- आत्म प्रिय

परिणय – बन्धन

पाणिग्रहण - विवाह

दम्पत्ति - वर – कन्या

ज्योतिर्विद – ज्योतिषी

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. क
3. क
4. ख
5. घ

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. मेलापक मीमांसा

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्त पारिजात
2. मुहूर्त्त गणपति
3. मेलापक मीमांसा

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मेलापक क्या है ? स्पष्ट कीजिये।

2. सम्प्रति मेलापक की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 मेलापक विधि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई 'मेलापक विधि' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने मेलापक का उद्देश्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इस इकाई में आप ज्योतिषोक्त मेलापक विधि का ज्ञान प्राप्त करेगें।

ज्योतिष शास्त्र में मेलापक करने की जो विधि कही गई है, उसे मेलापक विधि कहते है।

इस इकाई में आप मेलापक विधि का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करने जा रहे है। आशा है पाठकगण इसे अच्छी तरह से समझ सकेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- मेलापक विधि क्या है।
- मेलापक विधि का प्रयोजन क्या है।
- मेलापक विधि का उद्देश्य एवं महत्व क्या है।
- मेलापक का मानव जीवन में क्या उपयोग है।
- ज्योतिषक्त मेलापक विधि में क्या - क्या मिलान होता है।

2.3 मेलापक विधि

भारतीय सनातन परम्परा में जिन 'षोडश संस्कारों' का वर्णन किया गया है और उनका विधान बताया गया है, उनमें 'विवाह' संस्कार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। वर – कन्या का वैवाहिक जीवन सुख – समृद्धि से परिपूर्ण हो, इसलिए ज्योतिष शास्त्र ने 'मेलापक विधि' का निर्देश दिया है।

मेलापक विधि का आधार –

ज्योतिष शास्त्र के मुख्य रूप से तीन स्कन्ध है – गणित, फलित एवं संहिता। फलित स्कन्ध में दो ही वस्तुओं की अधिक प्रधानता है – प्रथम लग्न और द्वितीय चन्द्रमा। लग्न को शरीर एवं चन्द्रमा को मन कहते है, प्रेम मन से होता है शरीर से नहीं, इस कारण जन्म राशि के वश मेलापक देखा जाता है। **'विवाह वृन्दावन'** में लिखा है –

जन्म लग्नमिदमङ्गमिङ् गनामेतिरे मन इतीदुमन्दिरम्।
सौहृदं हि मनसोर्नदेहयोर्मेलकस्तदयमिन्दुगेहयोः॥

जन्म लग्न मनुष्यों का शरीर व चन्द्रमा मन रूप है। विवाह में मन का ही मिलन प्रधान है न कि शरीर का। अत: दोनों की चन्द्रराशियों का मिलान किया जाता है।

मेलापक के तीन भेद माने गये हैं -

1. नक्षत्र मेलापक
2. ग्रह मेलापक
3. भाव मेलापक

नक्षत्र मेलापक में वर – वधू की प्रकृति एवं अभिरूचि की समानता का विचार होता है तथा ग्रह मेलापक में मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु इन पापग्रहों की स्थिति, उसके प्रभाववश दोष और अन्ततोगत्वा वर – वधू में पूरकत्व भाव का विश्लेषण किया जाता है। तीसरा भेद, भाव मेलापक है जिसके द्वारा सुखद दाम्पत्य जीवन का ज्ञान होता है। जैसे वर के लग्नेश की राशि कन्या की ही राशि होना या वर का सप्तम भाव कन्या का लग्न होना या वर के सप्तमेश की राशि कन्या की लग्न या राशि होगी।

नक्षत्र मेलापक में प्रमुख रूप से विचारणीय तथ्य -

नक्षत्र मेलापक में प्रमुख रूप से निम्नलिखित ८ बातों का विचार किया जाता है –

1. वर्ण 2. वश्य 3. तारा 4. योनि 5. ग्रहमैत्री 6. गण 7. भकूट एवं 8. नाड़ी।

इन वर्ण आदि आठों गुण या पूर्णांक भी क्रमश: १,२,३,४,५,६७, व ८ होते हैं। इनका कुल योग ३६ होता है। यथा मुहूर्त्तचिन्तामणि में आचार्य 'रामदैवज्ञ' ने लिखा है –

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम्।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिका: ।।

नाम	गुण
वर्ण	१
वश्य	२
तारा	३
योनि	४
ग्रहमैत्री	५
गणकूट	६
भकूट	७
नाड़ी	८

कुल योग ३६

वर एवं वधू के जन्मांगों से उक्त आठों का विचार किया जाता है। जिनमें समानता या शुभता होती है, उनके गुण या अंकों का योग कर लिया जाता है।

इस अष्टविध मेलापक में वर्ण, वश्य, भकूट तथा ग्रहमैत्री,वर – कन्या की जन्मराशि पर आधारित है जबकि तारागुण, योनिगुण, गणमैत्री तथा नाड़ी गुण, वर –कन्या के जन्म नक्षत्र से सम्बन्धित है। इस प्रकार अष्टकूट के कुल ३६ गुणों में १५ गुण जन्मराशि पर शेष २१ गुण जन्मनक्षत्र से सम्बन्धित है।

इस मेलापक विधि में वर – वधू के बीच कम से कम १८ गुणों का मिलना आवश्यक है। इससे अधिक जितने भी गुण मिलते हैं उतना ही अधिक श्रेयस्कर होता है। कुछ विद्वानों ने वर्ण के आधार पर, चारों वर्णों के लिए, अलग – अलग मेलापकों को महत्व प्रदान किया है।

अनिष्टकर नक्षत्र –

नक्षत्र मेलापक को समझने हेतु उनके शुभाशुभ स्थिति को समझना अत्यन्त आवश्यक है। नक्षत्रों के कुछ पद अशुभ होते हैं। यदि कन्या या वर का जन्मनक्षत्र के उस अनिष्टकर चरण में हुआ हो, तो विवाहोपरान्त परिवार में कुछ अप्रिय घटित होता है। कुछ विशिष्ट योग अग्रांकित है –

क. मूल नक्षत्र का प्रथम चरण – पति के पिता का घातक अनिष्ट, शेष चरण हानि रहित।

ख. ज्येष्ठा नक्षत्र का प्रथम चरण – पति के अग्रज हेतु घातक अनिष्ट।

ग. विशाखा का चतुर्थ चरण – मॉ को घातक अनिष्ट।

घ. आश्लेषा का प्रथम चरण – पत्नी के माता- पिता के लिए अशुभ। पति के सन्दर्भ में अशुभ फल क्षीण।

ग्रह मेलापक –

यह अत्यन्त अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसका उद्देश्य है दोनों जन्मांगों में ग्रहों का समग्र अध्ययन, जिनके परिणामस्वरूप दाम्पत्य दारूण होता है या होने की संभावना होती है। यथा यदि एक जन्मांग के सप्तम भाव में मंगल शुक्र संस्थित हों और दूसरे जन्मांग के सप्तम भाव में बुध – वृहस्पति संस्थित हों तो दम्पत्ति के यौनाचरण में पर्याप्त विरोधाभास होता है, क्योंकि सप्तमस्थ मंगल, शुक्र यौनोत्तेजना परिवर्द्धित करते हैं और बुध, वृहस्पति, यौन – दुर्बलता का संचार करते हैं। ऐसे अनेकानेक ग्रहयोग हैं जिनके परिणामस्वरूप जीवन क्लेशित होता है। यथा शुक्र, चन्द्र सप्तमभावस्थ हों अथवा सप्तम भाव मंगल, शनि के मध्यस्थ होकर पापकर्तरि योगग्रस्त हों अथवा शुक्र सप्तम भाव सूर्य, चन्द्र के मध्य संस्थित हो तो दाम्पत्य पूर्णत: असंतोषप्रद होता है। जिस

जातक के जन्मांग में ऐसा विध्वंसक योग हो उसे इस प्रकार के जातक से विवाह करना चाहिए जिसका जन्मांग इन दुर्योगों को प्रभावहीन सिद्ध करता हो।

शुक्र – मंगल

जन्मांग मेलापक हेतु इन दोनों ग्रहों का सम्यक् विचार महत्वपूर्ण है। किसी शिशु की कुण्डली में शुक्र – मंगल के लग्नस्थ अथवा सप्तमस्थ होने पर उसका पालन – पोषण सात्विक नैतिक परिवेश में करना चाहिये। क्योंकि ये ग्रह अनाचार और व्यभिचार के प्रबल प्रेरक हैं। यदि लड़का – लड़की का शुक्र, मंगल समान राशि में संस्थित हों तो उनमें आकर्षण होता है। यदि एक का जन्म राशीश शुक्र और दूसरे का जन्म राशीश मंगल हो तथा दोनों की लग्न अथवा जन्मराशि परस्पर सप्तमस्थ हों,तो उनमें स्वभावत: आकर्षण होगा। यथा जातक के जन्मांग में वृष राशिगत शुक्र हो तो उनका दाम्पत्य अत्यन्त सार्थक होता है। वर का शुक्र, कन्या के मंगल पर दृष्टिपात करता हो, कन्या का मंगल वर के शुक्र पर दृष्टिपात करता हो तो वैवाहिक जीवन सौमनस्य पूर्ण होता है। यदि वर तथा कन्या में एक की लग्न मेष हो और दूसरे की तुला तो प्राय: उनका जीवन सुखी होता है। यदि एक की लग्न वृश्चिक और दूसरे की वृष हो, तो भी वैवाहिक जीवन उत्तम होता है। इसी तरह अन्य लग्नों में उत्पन्न जातकों के विषय में विचार करना चाहिये।

भाव मेलापक की प्रविधि –

समीचीन भाव मेलापक के कुछ प्रमुख सिद्धान्त अग्रांकित हैं –

१. वर कन्या की समान लग्न हो अथवा परस्पर सप्तम हो, तो वैवाहिक आनन्द लग्नेश एवं सप्तमेश के पारस्परिक आकर्षण पर ही निर्भर होता है।

२. मेरे अनुभवानुसार समजन्मराशि के जातकों में सामंजस्य उत्तम होता है। यह सिद्धान्त पति – पत्नी और मित्रता में समरूप में व्यवहृत होता है। ऐसे जातकों में वैचारिक भावनात्मक सम्मान स्थापित रहता है। पति – पत्नी की राशि परस्पर सप्तम होने पर भी दाम्पत्य मधुर सिद्ध होता है किन्तु सिंह – कुम्भ सदृश सप्तमस्थ राशियॉ अत्यधिक अवांछित है।

३. पति की नवमांश लग्न, पत्नी की लग्न हो अथवा पत्नी की नवमांश लग्न, पति की लग्न हो तो वैवाहिक सुख प्राप्त होता है।

४. वर – कन्या में से एक का द्वितीय और सप्तम भाव पापाक्रान्त होने पर दूसरे में द्वितीय और सप्तम भाव अथवा उनसे सप्तमस्थ राशि समान ग्रहों द्वारा पापाक्रान्त हो तो जन्मांगों का दुष्प्रभावों संतुलित हो जाता है।

५. यदि पति की जन्मराशि पत्नी की लग्न हो और पत्नी की जन्मराशि पति की लग्न हो अथवा

नवमांश चक्र में यह साम्य हो तो वैवाहिक जीवन संतुष्ट होता है।

६. मेलापक के समय दोनों जन्मांगों का समान निरीक्षण उपयुक्त है, यदि दोनों में कुछ पापग्रह समराशि अथवा परस्पर सप्तमस्थ राशि में स्थित हों तो दाम्पत्य संतुष्ट होता है।

७. वर का लग्नेश अथवा सप्तमेश जिस राशि में स्थित हो यदि वह राशि या लग्न कन्या की हो तो श्रेष्ठ है।

८. वर के सप्तमेश की उच्चराशि ही कन्या की राशि हो तो वैवाहिक जीवन सम्पन्न होता है।

९. वर के सप्तमेश की नीच राशि ही कन्या की राशि हो तब भी श्रेयस्कर होता है।

१०.वर का शुक्र जिस राशि में संस्थित हो वही राशि वधू की हो तो उत्तम होता है।

११. वर की लग्नेश संस्थित राशि कन्या की राशि हो तो सुखद है।

१२.वर के चन्द्र लग्न से सप्तमस्थ राशि कन्या की लग्नस्थ राशि हो तो शुभकर है।

१३.वर के जन्मांग का सप्तमाधिपति जिस नवांश में संस्थित हो उसके अधिपति की राशि या राशियों को जायाराशि की संज्ञा दी गई है। सप्तमेश की उच्च राशि भी जाया राशि होती है सप्तमभाव का नवमांश भी कलत्रराशि के अन्तर्गत आता है। वधू की जन्मराशि उपरिलिखित कलत्रराशियों में होना अपेक्षित है। कलत्र राशियों की त्रिकोणस्थ राशियों में से वधू की जन्मराशि हो सकती है। यदि वधू की जन्मराशि कलत्रराशि से पृथक् होती है तो वह निस्संतति रहती है।

१४.वृष, सिंह, कन्या अथवा वृश्चिक राशि में जातिका का जन्म होने पर उसके कम सन्तानें होती है। इन राशियों में शुभ ग्रह होने पर उसके श्रेष्ठ सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

१५.वर के सप्तमाधिपति और लग्नाधिपति स्फुटों के योगफल से राशि और नवमांश का ज्ञान होता है। इस राशि में कन्या की जन्मराशि निहित होने पर विवाह उत्तम होता है।

१६.वर की चन्द्रराशि से सप्तमभावस्थ ग्रह अथवा उस सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि निक्षेप करने वाला ग्रह ये जिन राशियों में संस्थित हों, उनमें यदि कन्या की लग्न निहित हो तो विवाह भाग्यवर्द्धक होता है।

१७.वर की सप्तमस्थ राशि यदि कन्या की जन्मराशि न हो और सप्तमेश की राशि की त्रिकोणस्थ राशि भी उनकी जन्मराशि न हो तो पुत्र संतति बाधित होती है।

१८.वर – कन्या की लग्नों के तत्वों और चन्द्रराशि के तत्वों में मैत्री या विरोध का भी पर्याप्त ध्यान होना अपेक्षित है।

१९.पुरूष जन्मांग की षष्ठस्थ अथवा अष्टमस्थ राशि यदि कन्या की जन्मराशि हो तो सामंजस्य

नहीं होता है, किन्तु यह राशि यदि द्वादश भाव में हो तो विशेष अहित नहीं होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. आचार्य मनु के अनुसार संस्कार कितने होते हैं –
   क. १४ ख. १५ ग. १६ घ. ४०
2. निम्न में लग्न किसका द्योतक है –
   क. मन का ख. नेत्र का ग. पाद का घ. शरीर का
3. मेलापक के भेदों की संख्या कितनी है –
   क. २ ख. ३ ग. ४ घ. ५
4. अष्टकूट में कितने प्रकार के गुणों का विचार होता है।
   क. ५ ख. ६ ग. ७ घ. ८
5. मेलापक में कुल गुणों की संख्या कितनी होती है।
   क. ३४ ख. ३६ ग. ४० घ. ४२

मेलापक के अन्य नियम –

१. पापी एवं क्रूरग्रहों में मंगल, राहु, शनि तथा सूर्य को ही स्थान दिया गया है। मंगल सर्वाधिक क्रूर ग्रह है। राहु, शनि एवं सूर्य क्रमश: कम पापी ग्रह है। वर – कन्या की जन्मकुण्डली के लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश भावों में पापी एवं क्रूर ग्रहों की संख्या समान होनी चाहिए। सप्तमेश एवं अष्टमेश की युति दाम्पत्य – सुख का नाश कर सकती है। वैधव्ययोग कन्या की कुण्डली में षष्ठस्थ शनि, सप्तमस्थ राहु तथा अष्टमस्थ मंगल या अष्टमस्थ राहु, सप्तमस्थ मंगल तथा षष्ठस्थ शनि अथवा राहु, सप्तमस्थ मंगल तथा षष्ठस्थ शनि अथवा सप्तमस्थ शनि तथा अष्टमस्थ मंगल के कारण होता है।

२. यदि कन्या की जन्मराशि वर के सप्तमेश की उच्च राशि हो तो सुखद दाम्पत्य की संभावना अधिक होती है।

३. यदि वर की कुण्डली में शुक्र उस राशि में स्थित है जो कन्या की जन्म राशि हो तो भी दाम्पत्य जीवन उत्तम रहेगा।

४. सप्तम भाव में शुभ ग्रह की स्थिति एवं दृष्टि, सप्तमेश पर शुभ दृष्टि या सप्तमेश के साथ शुभ युति विवाह के लिए शुभ माना जाता है।

५. यदि कन्या की जन्मराशि वह हो जिसमें वर के सप्तमेश स्थित हो तो दाम्पत्य सुखमय होता है।

६. यदि वर का लग्नेश जिस राशि में हो वही राशि कन्या की जन्मराशि हो तो वह भी सुखी विवाह होगा।

७. यदि अष्टमेश पापी ग्रह हो तथा वह अन्य पापी ग्रह से युत या दृष्ट हो तो वह सर्वाधिक अशुभ फल देता है। अष्टम भाव में स्थित, मंगल या शनि, दाम्पत्य सुख में बाधक सिद्ध होते हैं।

८. यदि कन्या की जन्मराशि वर के जन्मलग्न से षष्ठ या अष्टम भाव में पड़े अथवा वर की जन्मराशि कन्या के जन्मलग्न से षष्ठ या अष्टम भाव में पड़े तो दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं रहता है।

९. यदि वर – कन्या के जन्मराशीश एक ही हों अथवा वे परस्पर मित्र हों, तो उस स्थिति में नाड़ी दोष की भी उपेक्षा की जा सकती है।

विवाह निश्चित करते समय राशि तत्व पर भी ध्यान देना चाहिए। यदि वर – कन्या की जन्मराशि या जन्मलग्न एक ही तत्व के हों तो उनका दाम्पत्य जीवन उत्तम होगा । इसके ठीक विपरीत यदि वर – कन्या के राशि तत्वों या लग्नतत्वों के बीच शत्रुता होने पर दाम्पत्य जीवन असफल, कष्टकारी और मतभेदों से पूर्ण होगा ।

वर तथा कन्या के लग्नेश और राशीश भी एक ही तत्व के हों या मित्र तत्व के हों तो भी विवाह सफल सिद्ध होगा। उदाहरणार्थ, वर तथा कन्या का लग्नेश या राशीश, सूर्य, मंगल,गुरू तथा शनि में से ही हों तो विवाह सफल होगा।

विशेष – वर व कन्या दोनों का जन्म नाम लेकर मिलान देखना चाहिये। एक का जन्म नाम व दूसरे का प्रसिद्ध नाम लेकर कभी भी मिलान नहीं देखना चाहिये। यह महान दोष कारक होता है यथा –

जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामधिष्णयेन नामभम्।

व्यत्ययेन यदा योज्यं दम्पत्योर्निधनप्रदम्।।

जन्म नाम प्रधान है, यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये –

विवाहे सर्वमांगल्ये यात्रायां ग्रहगोचरे।

जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत्।।

अत: यदि जन्म नाम ज्ञात न होने पर भी पुकारू नाम से ही परीक्षण करनी चाहिये।

महात्मा वशिष्ठ का कथन है -

अज्ञातजन्मनां नृणां नामभे परिकल्पना ।

तेनैव चिन्तयेत् सर्वराशिकूटादिजन्मवत् ।।

मूल नक्षत्रादि दोष –

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित नक्षत्रों में जन्में हुये वर या कन्या क्या प्रभाव उत्पन्न करते हैं ? यह निम्नलिखित है –

१. यदि मूल नक्षत्र के प्रथम, द्वितीय या तृतीय चरण में उत्पन्न हो तो ऐसा लड़का – लड़की श्वसुर के लिए अनिष्टकारक होता है ।

२. यदि आश्लेषा नक्षत्र के द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ चरण में उत्पन्न हो तो सास के हानिकारक होता है ।

३. यदि विशाखा के चतुर्थ चरण में उत्पन्न हो तो ऐसी लड़की देवर (लड़का हो तो छोटे साले के लिए) कष्टकारी है ।

४. यदि ज्येष्ठा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में जन्मा हो तो लड़की अपने ज्येष्ठ के लिए (पति के बड़े भाई) और लड़का पत्नी के बड़े भाई के लिए कष्टकारक होता है ।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय सनातन परम्परा में जिन षोडश संस्कारों का वर्णन किया गया है और उनका विधान बताया गया है, उनमें 'विवाह' संस्कार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है । वर – कन्या का वैवाहिक जीवन सुख – समृद्धि से परिपूर्ण हो, इसलिए ज्योतिष शास्त्र ने 'मेलापक विधि' का निर्देश दिया है । मेलापक के तीन भेद माने गये हैं नक्षत्र मेलापक, ग्रह मेलापक एवं भाव मेलापक । नक्षत्र मेलापक में वर – वधू की प्रकृति एवं अभिरूचि की समानता का विचार होता है। तथा ग्रह मेलापक में मंगल, शनि, सूर्य, राहु एवं केतु इन पापग्रहों की स्थिति, उसके प्रभाववश दोष और अन्ततोगत्वा वर – वधू में पूरकत्व भाव का विश्लेषण किया जाता है । तीसरा भेद, भाव मेलापक है जिसके द्वारा सुखद दाम्पत्य जीवन का ज्ञान होता है। जैसे वर के लग्नेश की राशि कन्या की ही राशि होना या वर का सप्तम भाव कन्या का लग्न होना या वर के सप्तमेश की राशि कन्या की लग्न या राशि होगी ।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

षोडश – १६

अन्ततोगत्वा- अन्त में जाकर

सप्तमेश – सप्तम स्थान का स्वामी

मुहूर्त्तचिन्तामणि - मुहूर्त्त ग्रन्थ

विचारणीय - विचार करने योग्य

वर्ण - अष्टकूट विचार का प्रथम तत्व, गुण संख्या - १

वश्य - अष्टकूट में एक, गुण संख्या - २

ग्रहमैत्री – अष्टकूट में एक, गुण संख्या - ५

नाडी – अष्टकूटों का सर्वाधिक गुण वाला तत्व - ८

अष्टविध – आठ प्रकार के

श्रेयस्कर - पर्याप्त

विवाहोपरान्त – विवाह के उपरान्त

अनिष्टकर - अनिष्ट करने वाला

अग्रांकित - आगे अंकित

विरोधाभाव – विरोध का अभाव

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. घ
3. ख
4. घ
5. ख

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. मेलापक मीमांसा

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्त पारिजात
2. मुहूर्त्त गणपति
3. मेलापक मीमांसा

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मेलापक विधि से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये।
2. मेलापक विधि पर टिप्पणी लिखिये।
3. मेलापक विधि का शास्त्रीय विवेचन कीजिये।

इकाई – 3 अष्टकूट विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई 'अष्टकूट विचार' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाई में आपने मेलापक का उद्देश्य एवं मेलापक विधि का ज्ञान प्राप्त कर लिया है । इस इकाई में आप ज्योतिषोक्त अष्टकूट विचार का ज्ञान प्राप्त करेगें ।

ज्योतिष शास्त्र में वर – कन्या के विवाह हेतु विवाह के पूर्व मेलापक विचार के अन्तर्गत जो विचार किया जाता है, उसे अष्टकूट विचार कहते है ।

इस इकाई में आप अष्टकूट विचार का विधिवत् ज्ञान प्राप्त करने जा रहे है । आशा है पाठकगण इसे अच्छी तरह से समझ सकेगें ।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ अष्टकूट विचार क्या है ।
- ❖ अष्टकूट का प्रयोजन क्या है ।
- ❖ अष्टकूट विधि का उद्देश्य एवं महत्व क्या है ।
- ❖ अष्टकूट का मानव जीवन में क्या उपयोग है ।
- ❖ अष्टकूट विधि में क्या - क्या होता है।

3.3 अष्टकूट विचार

इस जगत् के प्रत्येक नर – नारी, वर – कन्या को सुखमय दाम्पत्य जीवन अभीष्ट होता है । वर्तमान युग, अनिश्चितता का युग है जिससे वैवाहिक जीवन में स्वप्न साकार स्वरूप ग्रहण करने के स्थान पर परस्पर सामंजस्यपूर्ण वैवाहिक जीवन का निर्वहन करते हैं । परम्परागत विधान तथा जीवनसाथी के प्रति संकल्प भी दायित्वों को ध्वस्त करने से नहीं बच पाता । प्रकम्पित कर देने वाले तथ्यों से हमारे मनीषी ऋषि – महर्षि पूर्णत: परिचित थे । अनेक सिद्धियों और साधनाओं के आधार पर भविष्य को देखने समझने तथा आभास करने की उनमें विलक्षण शक्ति थी । हमारे परम पूज्य आचार्यों ने ज्योतिष विज्ञान के गर्भसागर की तलहटी से जीवन रहस्य सीप का हृदय चीरकर, सुखद दाम्पत्य प्राप्त करने हेतु जन्मांगों के मिलान के अद्भुत सूत्र एवं सिद्धान्त रूपी मोती प्रस्तुत किये । इन सिद्धान्तों के गंभीर तथा निष्पक्ष अनुसरण – अनुपालन करने के पश्चात् वर – कन्या का

चुनाव पाणिग्रहण हेतु करना चाहिए ताकि दाम्पत्य जीवन की मधुरता जीवन पर्यन्त एक दूसरे के प्रति प्रीति प्रतीति परिपूरित परिणय पथ को प्रशस्त करता रहे ।

अष्टकूट का विचार करते हुये आचार्य रामदैवज्ञ जी ने मुहूर्तचिन्तामणि में लिखा है कि -

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिका: ।।

विवाह के मेलापक में यह ८ कूट कहे गये है – वर्ण , वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गण, भकूट एवं नाडी । इन आठ प्रकार के कूटों का क्रमश: १,२,३,४,५,६,७,८ गुण होते है , जिनका कुल योग ३६ होता है ।

विवाह की अनुमति प्रदान करने हेतु १६.५ गुणों का साम्य अनिवार्य है, पर १८ गुणों का साम्य होना सहज दाम्पत्य जीवन को संकेतित करता है । २५ गुणों का मिलान उत्तम माना है, ३० गुण मिलते हों, तो मेलापक श्रेष्ठ सुखमय वैवाहिक जीवन की संरचना करता है, यदि ३० से ३६ गुणों के मध्य अष्टकूटों का साम्य हो तो असाधारण उत्तम ग्रह मेलापक की संज्ञा प्रदान की जाती है । इस मिलान से मंगली दोष, विषकन्या आदि दोष भी शिथिल पड़ जाते है तथा दम्पत्ति, जीवन भर एक दूसरे के साथ प्रेमपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं । यह ऋषियों – मनीषियों की अभूतपूर्व देन है । आइये इसी क्रम में सर्वप्रथम वर्ण विचार करते है –

वर्णविचार -

द्विजा झषालिकर्कटास्ततो नृपाविशोऽङ्घ्रिजा: ।
वरस्य वर्णतोऽधिका वधूर्न शस्यते बुधै: ।।

मीन, वृश्चिक, कर्क राशि विप्र वर्ण हैं । मेष – धनु- सिंह राशि क्षत्रिय वर्ण हैं । वृष – मकर – कन्या वैश्य वर्ण और मिथुन – कुम्भ – तुला शूद्र वर्ण है । यदि वर के वर्ण से कन्या वर्ण अधिक हों तो उस वर के लिए वह कन्या शुभ नहीं होती ।

परन्तु कन्या से वर का राशि वर्ण अल्प होने पर भी यदि वर का राशि पति कन्या के राशिपति से उत्तम वर्ण का हो तो वहॉ उस राशि की चिन्ता नहीं करना चाहिये ।

राशियों के वर्ण बोधक चक्र –

वर्ण	**ब्राह्मण**	**क्षत्रिय**	**वैश्य**	**शूद्र**
राशि	कर्क, वृश्चिक, मीन	सिंह, धनु, मेष	कन्या, मकर, वृष	तुला, कुम्भ, मिथुन

ब्राह्मण वर्ण – गुरू, शुक्र, क्षत्रिय वर्ण – सूर्य, मंगल, वैश्य वर्ण – चन्द्रमा , शूद्र वर्ण – बुध और

चाण्डाल वर्ण शनि हैं।

कन्या – वर का वर्णगुण ज्ञानार्थ चक्र –

वर वर्ण

कन्या वर्ण

१ वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
ब्राह्मण	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

विशेष - समाज में प्रचलित वर्णो की भॉति, राशियों में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र चार वर्ण होते हैं। उच्च वर्ण में उॅचे होने का भाव रहता है। जैसे क्षत्रिय वर्ण के मनुष्य पर यदि शूद्र वर्ण का मनुष्य प्रभाव दिखाना चाहें तो वह क्षत्रिय वर्ण का पुरूष, शूद्र वर्ण के पुरूष का दमन कर देगा। इसी प्रकार यदि ब्राह्मण या क्षत्रिय वर्ण की कन्या हो और शूद्र वर्ण का वर हो तो वह कन्या, उच्च वर्ण की होने के कारण, शूद्र वर्ण के वर को सदैव दबाती रहेगी। इस प्रकार स्त्री और पुरूष का जीवन गृहस्थाश्रम में सुखपूर्वक व्यतीत नहीं हो सकेगा। इसी समस्या से बचने के लिए आचार्यों ने वर्ण का विचार किया है।

महर्षि नारद जी का कथन है कि वर्णदोष के रहने पर, कथमपि विवाह न किया जाय अन्यथा पति की मृत्यु निश्चित है –

वर्णश्रेष्ठा तु या नारी वर्णहीनस्तु यः पुमान्।
विवाहं नैव कुर्वीत तस्या भर्ता न जीवति ।।
विवाहं यदि कुर्वीत तस्य भर्ता विनश्यति।

अर्थात् उच्च वर्ण की कन्या से हीन वर्ण के पुरूष के साथ विवाह नहीं करना चाहिये अन्यथा उसके पति का विनाश निश्चित है। सम्प्रति कालचक्र में ऐसा सम्पूर्ण घटित नहीं हो पा रहा है।

२. **वश्य विचार –**

हित्वा मृगेन्दं नरराशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजाश्च भक्ष्याः।

सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनार्लि ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ।।

सिंह को छोड़कर सभी पुरूष राशियॉ के वश्य होते हैं तथा सभी जलचर (कर्क, मकर, कुम्भ, मीन) राशि के वश्य होते हैं तथा सभी जलचर (कर्क, मकर,कुम्भ, मीन) राशि नर राशि के भक्ष्य होते हैं। वृश्चिक के बिना सभी राशि के वश्य होते हैं। इससे अधिक लोगों के व्यवहार से वश्य भक्ष्य जानना चाहिये।

वश्य प्रकरण में विचार किया जाता है कि स्त्री, पति के अधीन,रहने वाली है या नहीं। वस्तुत: स्त्री का पति के अधीन रहना भी आवश्यक है, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री की देखभाल बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र करता है।

पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने।

पुत्रो रक्षिति वृद्धत्वे न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति ।।

इस प्रकार स्त्री कभी भी स्वतंत्र, स्वच्छन्द रूप से नहीं रह सकती, क्योंकि स्त्री कोमल – प्रेमिल भावनाओं की प्रतिमूर्ति होती है। अनर्थ से बचने और गृहस्थाश्रम सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिए वश्य का विचार किया जाना चाहिए।

वश्य का अर्थ है – 'वश में करने योग्य'। सिंह राशि को छोड़कर सभी राशियॉ पुरूष राशियों के अधीन होती है।

विशेष – वर – कन्या के मैत्री में दो गुण, वैर और भक्ष्य में शून्य गुण, वश्य - वैर में १ गुण तथा वश्य - भक्ष्य में आधा गुण होता है। यहॉ ध्यान देने याग्य है कि वर की तुलना में कन्या भक्ष्य या वश्य होनी चाहिये।

यहॉ मेष, वृष, सिंहऔर धनु ये ४ राशियॉ चतुष्पद हैं। मिथुन, कन्या और तुलना ये ३ राशियॉ द्विपद (नर) , कर्क, मकर, कुम्भ और मीन ये ४ जलचर तथा वृश्चिक राशि कीट संज्ञक हैं।

वश्य ज्ञान हेतु स्पष्टार्थ चक्र –

वर

२	नर	चतुष्पद	जलचर	कीट
नर	२	१	॥	१
चतु.	१	२	१	०

कन्या	जल.	॥	१	२	१
	कीट	१	०	१	२

तारा विचार –

ताराकूट का सम्बन्ध नक्षत्रों से है। जन्म - नक्षत्र से गणना करने पर तारा का ज्ञान होता है। जन्म सम्पद्, विदद् , क्षेम,प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र ये नक्षत्र ही ताराएँ होती है। ये शुभाशुभ दोनों प्रकार के हैं। कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गणना कर तथा उसी प्रकार वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गणना कर अलग से ९ का भाग दें। शेष संख्यानुसार तारा होती है। जन्म नक्षत्र से गणना करने पर तारा का ज्ञान होता है। ३,५,७ ताराएँ अशुभ हैं। शेष शुभ होती है।

कन्यर्क्षाद्वरभं यावत्कन्याभं वरभादपि।
गणयेन्नबहृच्छेषे त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम् ॥

वर तारा

कन्या तारा

तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

योनि विचार –

> **अश्विन्यम्बुपयार्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः।**
> **सिंहो वस्वजपादभयोः समुदितो याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः॥**
> **मेषो देवपुरोहितनलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः।**
> **स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चान्द्राब्जयोन्योरहिः ॥**
> **ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरंग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा।**
> **मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोन्दुरूः॥**
> **व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुध्न्यर्क्षयो ।**
> **र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोन्योस्त्यजेत्॥**

अश्विनी – शतभिषा नक्षत्र अश्व योनि, स्वाती – हस्त नक्षत्र महिष योनि, धनिष्ठा – पूर्वाभाद्रपद की सिंह योनि, भरणी – रेवती की गज योनि, पुष्य, कृत्तिका की मेष योनि, श्रवण – पूर्वाषाढ़ा की मकर योनि, उत्तराषाढ़ा – अभिजित की नकुल , मृगशिरा – रोहिणी की सर्प योनि, ज्येष्ठा – अनुराधा की मृग, मूल – आर्द्रा की श्वान योनि, पुनर्वसु – आश्लेषा की मार्जार योनि, मघा – पूर्वा फाल्गुनी की मूषक, विशाखा – चित्रा की व्याघ्र और उत्तराफाल्गुनी – उत्तराभाद्रपद की गौ योनि होती है। श्लोक के एक – एक चरण में नक्षत्रों की कही गई दो – दो योनियों में परस्पर महावैर होता है जो विवाह में त्याज्य हैं।

यथा - अश्व – महिष, सिंह – गज, मेष – वानर, नकुल-सर्प, मृग – श्वान, मार्जार – मूषक,तथा व्याघ्र – गौ इनमें पारस्परिक शत्रुता होती है। इन शत्रुता वाले योनियों में वर – कन्या का विवाह उत्तम नहीं होता है।

अभ्यास प्रश्न

१. अष्टकूट विचारान्तर्गत सहज दाम्पत्य जीवन हेतु न्यूनतम कितने गुणों की आवश्यकता होती है –

   क. १६ ख. १८ ग. ३६ घ. २८

२. अष्टकूट विचार में गुणों की कुल कितनी संख्या होती है।

   क. ३४ ख. ३६ ग. ४८ घ. ३८

३. निम्न में विप्र वर्ण की राशियॉ है –

   क. ४,८,१२ ख. १,५,९ ग. २,६,१० घ. ३,७,११

४.निम्न में से किस पुरूष राशि को छोड़कर अन्य सभी का वश्य होता है –

क. कन्या ख. सिंह ग. धनु घ. मकर

५. ताराकूट का सम्बन्ध किस से है –

क. राशि से ख. नक्षत्र से ग. ग्रह से घ. कोई नहीं

योनिकूट का सम्बन्ध नक्षत्रों से है। अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों की अश्व, गज, मेष, सर्प आदि योनियॉ मानी गयी हैं। योनियों का सम्बन्ध परस्पर पॉच प्रकार का है –

१. स्वभाव
२. मित्र
३. उदासीन
४. शत्रु
५. महाशत्रु

वर और कन्या के नक्षत्रों की योनि एक हो अथवा दोनों के नक्षत्र भिन्न योनि के हो हों तो विवाह - सम्बन्ध शुभ माना गया है। यदि दोनों के नक्षत्र परस्पर उदासीन योनि के हों तो विवाह सम्बन्ध सामान्य होता है। यदि वर – कन्या के नक्षत्र परस्पर शत्रु योनि के हों तो अशुभ, और यदि महाशत्रु योनि के है तो महा अशुभ होता है। उपर वर का नीचे कन्या का मानते हुये चक्र द्वारा विचार करें -

योनि	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	३	१	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	२	२	२	२	०
मेष	३	३	४	३	२	३	१	३	३	१	३	०	३	१
सर्प	२	२	३	४	२	२	१	१	२	२	२	२	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	१	२	२	१	०	२	२	१
मार्जार	२	२	३	२	१	४	०	२	२	१	२	२	२	२
मूषक	२	२	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गौ	३	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
महिष	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	२	१	२	२
मृग	३	२	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वानर	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
नकुल	२	२	३	०	२	२	२	३	२	२	२	४	४	२
सिंह	१	०	१	२	१	२	१	१	३	२	२	२	२	४

ग्रहमैत्री विचार –

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणौ।

सौम्यश्चास्य समो विधोर्बुधरवी मित्रे न चास्य द्विषत् ।।

शेषाश्चास्य समाः कुजस्य सुहृदश्चन्द्रेज्यसूर्या बुधः ।

शत्रुः शुक्रशनी समौ च शशभृत्सूनोः सिताहस्करौ ।।

मित्रे चास्य रिपुः शशी गुरूशनिक्ष्माजाः समा गीष्पते।

र्मित्राण्यर्कजेन्दवो बुधसितौ शत्रू समः सूर्यजः ।।

मित्रे सौम्यशनी कवेः शशिरवी शत्रू कुजेज्यो समौ।

मित्रे शुक्रबुधौ शनेः शशिरविक्ष्माजा द्विषोऽन्यः समः ।।

सूर्य के मंगल - गुरू, चन्द्रमा मित्र, शुक्र – शनि शत्रु और बुध सम है।

चन्द्रमा के बुध – सूर्य मित्र, मंगल , गुरू, शुक्र, शनि – सम और शत्रु कोई नहीं है।

मंगल के चन्द्र – गुरू – सूर्य मित्र, बुध शत्रु और शुक्र – शनि सम है।

बुध के शुक्र – सूर्य मित्र, चन्द्रमा शत्रु और मंगल, गुरू, शनि सम है।

गुरू के – सूर्य – मंगल – चन्द्रमामित्र, बुध – शुक्र शत्रु और शनि सम है।

शुक्र के – बुध – शनि मित्र, चन्द्र – सूर्य शत्रु और मंगल – गुरू सम हैं।

शनि के – शुक्र – बुध मित्र, चन्द्र - सूर्य – मंगल शत्रु और गुरू सम हैं।

इस कूट का सम्बन्ध राशियों से है। यदि वर – वधू दोनों की राशियों का एक ही स्वामी हो अथवा दोनों की राशियों के स्वामी परस्पर मित्र – मित्र हों तो विवाह सम्बन्ध अत्युत्कृष्ट माना जाता है। यदि मित्र सम हों तो उत्कृष्ट विवाह सम्बन्ध होगा। यदि दोनों की राशियों के स्वामी सम – सम हों तो विवाह सम्बन्ध सामान्य होगा।

यदि दोनों की राशियों के स्वामी मित्र –शत्रु हों तो विवाह सम्बन्ध निकृष्ट माना जाता है। यदि सम शत्रु हों तो निकृष्टतर विवाह सम्बन्ध होगा और यदि दोनों की राशियों के स्वामी शत्रु – शत्रु हों तो निकृष्टतम विवाह सम्बन्ध माना जाता है।

गण विचार –

रक्षोनरामरगणाः क्रमतोमघाहिवस्विन्द्रमूलवरूणानलतक्षराधाः ।

पूर्वोत्तरात्रयतिधातृयमेशभानि मैत्रादितीन्दुहरिपौष्णमरूल्लघूनि ।।

मघा, आश्लेषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा,कृत्तिका, चित्रा और विशाखा ये ९ नक्षत्र **राक्षस गण** हैं। तीनों पूर्वा , तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा ये ९ नक्षत्र **मनुष्य गण** हैं। अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी और पुष्य ये ९ नक्षत्र **देव गण** हैं।

गणफल -

निजनिजगणमध्ये प्रीतिरत्युत्तमा स्यादमरमनुजयो: सा मध्यमा सम्प्रदिष्टा।
असुरमनुजयोश्चेन्मृत्युरेव प्रदिष्टो दनुजविबुधयो: स्याद्वैरमेकान्तोऽत्र ।।

अपने – अपने गण में विवाह हो तो वर – कन्या में अत्युत्तम प्रेम होता है, देवगण और मनुष्य गण में विवाह हो तो मध्यम प्रेम होता है। राक्षस गण और मनुष्य गण में विवाह हो तो मृत्यु होती है तथा राक्षस गण, देवगण में विवाह होने पर वर – कन्या में एकान्त वैर होता है।

यदि वर – कन्या का गण एक ही हो तो ६ गुण, देवता – मनुष्य में ५ गुण, देवता – राक्षस तथा मनुष्य - राक्षस गण में ० गुण होता है। यहाँ यदि कन्या देव एवं वर नर गण हो तो ४, वर राक्षस एवं कन्या देव हो तो २ तथा वर राक्षस एवं कन्या मनुष्य गण हो तो १ गुण होता है।

परिहार - वर – कन्या के गणदोष रहने पर भी यदि दोनों की ग्रहमैत्री या नवमांश पति की मैत्री हो तो विवाह शुभ होता है।

भकूट विचार –

मृत्यु: षडाष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे।
द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ।।

वर – कन्या की राशि ६-८ हो तो विवाह होने पर मृत्यु होती है (इसे षडाष्टक दोष कहते हैं), दोनों की राशि परस्पर ५-९ हो तो सन्तान की हानि होती है तथा दोनों की राशि २-१२ द्विर्द्वादश हो तो दरिद्रता होती है। इनके अतिरिक्त ३-११, ४-१०, ७-७ तथा एक ही राशि में विवाह शुभ होता है।

नाड़ी विचार –

ज्येष्ठारौद्रार्यमाम्भ: पतिभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी।
पुष्येन्दुत्वाष्ट्र मित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्ने च मध्या ।।
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरास्या
द्म्पत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्यु: ।।

ज्येष्ठा, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, शतभिषा इन प्रत्येक से २-२ नक्षत्र अर्थात् (ज्येष्ठा – मूल, आर्द्रा – पुनर्वसु ,उत्तराफाल्गुनी – हस्त, शतभिषा – पूर्वाभाद्रपद) और अश्विनीये ९ नक्षत्र आदि नाड़ी है। पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद ये ९ नक्षत्र मध्य नाड़ी है।

स्वाती, कृत्तिका,आश्लेषा, उत्तराषाढ़ा, इनसे २-२ नक्षत्र अर्थात् (स्वाती – विशाखा, कृत्तिका-रोहिणी, आश्लेषा – मघा, उत्तराषाढ़ा – श्रवण और रेवती) ये ९ नक्षत्र अन्त्य नाड़ी के हैं।

यदि वर – कन्या दोनों की नाड़ी एक ही हो तो विवाह अशुभ है और यदि दोनों की नाड़ी मध्य हो तो एक ही हो तो मृत्यु होती है।

नाड़ी ज्ञानार्थ चक्र –

आदि नाड़ी	अ.	आ.	पुन.	उ.फा.	ह.	ज्ये.	मू.	श.	पू. भा.
मध्य नाड़ी	भ.	मृ.	पु.	मृ.	चि.	अनु.	पू.षा.	ध.	उ.भा.
अन्त्य नाड़ी	कृ.	रो.	आश्लेषा	म.	स्वा.	वि.	उ. षा	श्र.	रे.

इन २७ नक्षत्रों की सर्पाकार चक्र को फणिचक्र भी कहते हैं।

वर नाड़ी

कन्या नाड़ी

नाडी	**वर नाड़ी**			
कन्या	८	आदि	मध्य	अन्त्य
नाड़ी	आदि	०	८	८
	मध्य	८	०	८
	अन्त्य	८	८	०

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि इस जगत् के प्रत्येक नर – नारी, वर – कन्या को सुखमय दाम्पत्य जीवन अभीष्ट होता है। वर्तमान युग, अनिश्चितता का युग है जिससे वैवाहिक जीवन में स्वप्न साकार स्वरूप ग्रहण करने के स्थान पर परस्पर सामंजस्यपूर्ण वैवाहिक जीवन का निर्वहन करते हैं। परम्परागत विधान तथा जीवनसाथी के प्रति संकल्प भी दायित्वों को

ध्वस्त करने से नहीं बच पाता। प्रकम्पित कर देने वाले तथ्यों से हमारे मनीषी ऋषि – महर्षि पूर्णत: परिचित थे। अनेक सिद्धियों और साधनाओं के आधार पर भविष्य को देखने समझने तथा आभास करने की उनमें विलक्षण शक्ति थी। हमारे परम पूज्य आचार्यों ने ज्योतिष विज्ञान के गर्भसागर की तलहटी से जीवन रहस्य सीप का हृदय चीरकर, सुखद दाम्पत्य प्राप्त करने हेतु जन्मांगों के मिलान के अद्भुत सूत्र एवं सिद्धान्त रूपी मोती प्रस्तुत किये। इन सिद्धान्तों के गंभीर तथा निष्पक्ष अनुसरण – अनुपालन करने के पश्चात् वर – कन्या का चुनाव पाणिग्रहण हेतु करना चाहिए ताकि दाम्पत्य जीवन की मधुरता जीवन पर्यन्त एक दूसरे के प्रति प्रीति प्रतीति परिपूरित परिणय पथ को प्रशस्त करता रहे ।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

अभीष्ट – चाह या इच्छित

परम्परागत - आरम्भ से जो चली आ रही हो

अनिश्चितता – जिसका कोई निश्चित अवधि न हो

प्रीति - प्रेम

परिणय - विवाह

रामदैवज्ञ - मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ के लेखक

विषकन्या - वैधव्य योग

झष – मीन राशि

अलि – वृश्चिक राशि

द्विज – ब्राह्मण

गृहस्थाश्रम - चार आश्रमों में एक आश्रम

भर्त्ता – पति, पालन करने वाले को

अनिष्टकर - अनिष्ट करने वाला

द्विपद - दो पैर वाला

चतुष्पद – चार पैर वाला

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख

2. ख

3. क

4. ख

5. ख

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि

2. मेलापक मीमांसा

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्त पारिजात

2. मुहूर्त्त गणपति

3. मेलापक मीमांसा

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अष्टकूट क्या है ? स्पष्ट कीजिये।

2. अष्टकूट की व्याख्या कीजिये ।

3. अष्टकूट मिलान किस प्रकार किया जाता है । उदाहरण सहित समझाइये।

इकाई – 4 अष्टकूट दोष परिहार

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 अष्टकूट दोष परिहार

अभ्यास प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई 'अष्टकूट दोष परिहार' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने अष्टकूट विचार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इस इकाई में आप अष्टकूट दोष के परिहार का ज्ञान प्राप्त करेगें।

ज्योतिष शास्त्र में अष्टकूट मिलान के अन्तर्गत जो दोष उत्पन्न होते है,उन दोषों के निराकरणार्थ जो परिहार कहे गये है उसे 'अष्टकूट दोष परिहार' कहते है ।

इस इकाई में आप अष्टकूट दोष परिहार का ज्ञान प्राप्त करने जा रहे है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ अष्टकूट दोष परिहार क्या है।
- ❖ परिहार का प्रयोजन क्या है।
- ❖ अष्टकूट दोष परिहार का उद्देश्य क्या है।
- ❖ अष्टकूट दोष परिहार का क्या – 2 उपयोग है।
- ❖ अष्टकूट दोष परिहार के अन्तर्गत क्या होता है।

4.3 अष्टकूट दोष परिहार

वर एवं कन्या के अष्टकूट का विचार करते हुए उसके दोष व उसके परिहार का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये। इस इकाई में आइये अष्टकूट के दोषों का परिहार की चर्चा करते है। यदि देखा जाये तो ज्योतिष के समस्त ग्रन्थों में मेलापक एवं मुहूर्त ग्रंथों में अष्टकूट दोषों के साथ ही उनके परिहारों का वर्णन भी किया गया है। परिहार उपलब्ध होने पर दोष कि निवृति मान कर उसके आधे गुण ग्रहण करने का शास्त्र उपदेश देते हैं। कुल 36 गुणों में से 18 से 21 तक गुण मिलने पर मिलान मध्यम तथा इस से अधिक होने पर उत्तरोतर शुभ मिलान होता है। निम्न चक्रानुसार अष्टकूट के परिहार का क्रमश: ज्ञान कर सकते है -

अष्टकूट का नाम	परिहार
वर्ण	राशियों के स्वामियों या नवांशेशों कि मैत्री या एकता हो।
वश्य	राशियों के स्वामियों या

	नवांशेशों कि मैत्री या एकता हो।
तारा	राशियों के स्वामियों या नवांशेशों कि मैत्री या एकता हो।
योनि	राशियों के स्वामियों या नवांशेशों कि मैत्री या एकता हो।
राशिः मैत्री	1 राशियों के नवांशेशों कि मैत्रीया एकता हो। 2 भकूट दोष न हो।
गण	1 राशियों के स्वामियों या नवांशेशों कि मैत्री या एकता हो। 2 भकूट दोष न हो 1
भकूट	राशियों के स्वामियों या नवांशेशों कि मैत्री या एकता हो।
नाडी	1. दोनों कि राशिः एक तथा नक्षत्रअलग-अलग हों। 2. दोनों के नक्षत्र एक तथा राशि अलग -अलग हो। 3. दोनों के नक्षत्रों में चरण वेध न हो अर्थात दोनों के नक्षत्रों के चरण 1- 4 या 2-3 न हो क्योंकि इनमें परस्पर वेध होता है।

वर्ण दोष परिहार –

१. राशीश मैत्री - वर कन्या के राशीश परस्पर मित्र – मित्र या मित्र सम
२. राशीश एकता - वर कन्या का एक ही राशीश
३. नवमांशेश मैत्री – वर कन्या के नवमांशेश परस्पर मित्र - मित्र अथवा मित्र सम
४. कन्या के राशीश का वर्ण, वर के राशीश के वर्ण से हीन हो।

वश्यकूट परिहार –

१. राशीश – मैत्री दोनों के राशीश परस्पर मित्र – मित्र अथवा मित्र सम।
२. राशीश – एकता – दोनों का एक ही राशीश।
३. नवमांशेश - मैत्री - दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र – मित्र या मित्र सम।
४. नवमांशेश - एकता - दोनों का एक ही नवमांशेश।
५. योनि मैत्री- योनिकूट के ३ पाद गुण।

तारा दोष परिहार –

१. राशीश मैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र – मित्र या मित्रसम)।
२. राशीश एकता (दोनों का राशीश एक हो)।
३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश मित्र – मित्र या मित्रसम)।
४. नवमांशेश एकता (दोनों का नवमांशेश एक हो)।

योनि दोष के परिहार -

१. राशीशमैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र – मित्र या मित्रसम)
२. राशीश एकता (दोनों का एक ही राशीश)
३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र- मित्र या मित्र सम)
४. भकूट शुद्धि
५. वश्य शुद्धि (वश्य गुण १ या २ होने पर)

ग्रहमैत्री दोष के परिहार –

१. नवमांशेष मैत्री (दोनों के नवमांशेष परस्पर मित्र – मित्र या मित्र सम)।
२. नवमांशेष एकता (दोनों का नवमांशेष एक ही हो)।
३. दोनों की राशियॉ भिन्न – भिन्न और नक्षत्र एक हों।
४. सद्भकूट हो।

गण दोष परिहार –

१. राशीश मैत्री (दोनों के राशीश परस्पर मित्र – मित्र या मित्रसम)।

२. राशीश एकता (दोनों का एक ही राशीश)।

३. नवमांशेश मैत्री (दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र – मित्र अथवा मित्र सम)।

४. नवमांशेश – एकता (दोनों का एक ही नवमांशेश)।

भकूट दोष परिहार –

१. राशीश मैत्री दोनों के राशीश परस्पर मित्र – मित्र या मित्रसम।

२. राशीश एकता दोनों का एक ही राशीश।

३. नवमांशेश मैत्री दोनों के नवमांशेश परस्पर मित्र – मित्र या मित्र सम।

४. नवमांशेश – एकता दोनों का एक ही नवमांशेश।

षडाष्टक परिहार-

1. मेष, वृश्चिक, वृष, तुला, मिथुन, मकर, कर्क, धनु, सिंह, मीन तथा कन्या कुम्भ आदि मित्र राशियों का षडाष्टक शुभ होता हैं जबकि वैर षडाष्टक ही विशेषतया त्याज्य होता हैं। यथा -1-6, 2-9, 3-8, 4-11, 5-10, 7-12 राशियों का शत्रुगत षडाष्टक होने से त्याज्य माना जाता हैं।
2. परिहारस्वरूप तारा-शुद्धि राशीश मैत्री राशिवश्यैक्त अथवा राशि स्वामी ग्रह समान होने पर षडाष्टक दोष भी ग्राह्य होता हैं, यथा- **नवम् पंचम परिहार -**

1. वर की राशि से कन्या की राशि पांचवी हो और कन्या की राशि से वर की राशि 9वीं हो तो यह नव पंचम शुभ होता हैं।

2. मीन-कर्म, वृश्चिक-कर्क, मिथुन-कुम्भ और कन्या मकर-ये चार नवपंचक विशेषयता त्याज्य माने जाते हैं।

3. वर-कन्या दोनों के चन्द्र अधिपति अथवा राशि नवांशपति परस्तर मित्रक्षेत्री हों तो नवपंचम अविचारणीय हैं।

द्विर्दादश दोष का परिहार-

1. लड़के की राशि से कन्या की राशि दूसरी हो तो कन्या धन हानिकारक और 12 वीं हो तो वह धनवती और पति प्रिया होती हैं।

2. 1-2, 3-4, 5-6, 7-8, 9-10 एवं 11-12 राशियॉ का द्वि द्वादश शत्रु द्विद्वादश एवं अनिष्टकर मानते हैं।

3. मतान्तर में सिंह और कन्या द्विर्दादश ग्राह्य हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ परिस्थितियों में वर कन्या की परस्पर राशि स्थिति विशेष शुभकारी होती हैं। जैसे वर कन्या दोनों की एक ही राशि 10 वें का होना दोनों की राशियों पर परस्पर 3-11 वें (त्रिरेकादश) होना दोनों की रशियों का आपस में 4-10 वें होना एवं च दोनों की राशियों का परस्पर सप्तम (समसप्तक) होना वर कन्या के वैवाहित जीवन के लिए शुभफल प्रद होता हैं।

अभ्यास प्रश्न –

१. भकूट से क्या तात्पर्य है –
   क. नक्षत्रकूट ख. राशिकूट ग. मेलापक घ. कोई नहीं
२. षडाष्टक होता है –
   क. १-६ ख. १-५ ग. ३-९ घ. २-६
३. वर की राशि के वर्ण से कन्या की राशि का वर्ण उत्तम हो तो –
   क. वर्ण दोष नहीं होता है।
   ख. वर्ण दोष होता है।
   ग. वर्ण दोष में साम्यता होती है।
   घ. कोई नहीं
४. वर – कन्या की राशि एक और नक्षत्र भिन्न - 2 हो तो –
   क. गण दोष होता है ख. गण दोष नहीं होता है
   ख. दोनों घ. दोनों नहीं
५. नाड़ी दोष होता है –
   क. ब्राह्मणों में ख. क्षत्रियों में ग. वैश्यों के लिये घ. शूद्रों के लिये

नाड़ी दोष विचार-

अष्टकूट निर्धारक तत्त्वों में नाडी का विशेष महत्त्व हैं। वर कन्या की एक ही नाड़ी होना विवाह में अशुभ माना जाता हैं। 36 गुणें मेंसे इसके 8 गुण होते हैं। भिन्न नाड़ी के आठ गुण तथा नाड़ी समान होने पर गुणाभाव अर्थात शून्य गुण होता हैं। अश्वन्यदि 27 जन्म नक्षत्रों को तीन नाड़ियों (पंक्तियों) में विभाजित किया गया हैं। आदि मध्य और अन्त्य। इनका विवरण निम्न चक्र में दिया गया हैं।

वर कन्या का जन्म नक्षत्र एक ही नाड़ी में पड़ना विवाह में अशुभ माना जाता है। दोनों की आदि प्रथम नाड़ी हो तो विवाह के पश्चात उनका परस्पर वियोग आदि मध्य नाड़ी हो तो दोनों की हानि तथा अन्त्य नाड़ी हो तो वैधव्य या अतिशत दुःख होता हैं।

वर कन्या के नक्षत्र एक ही नाड़ी वाले हों तो नाड़ी दोष माना जाता हैं। एक समान नाड़ी वाले वर कन्या को ज्योतिषाचायों में बहुत अशुभ माना हैं।

विवाह में नाड़ी दोष का अचार्यो द्धारा विरोष महत्त्व दिया गया हैं। नारद ऋषि अनुसार विवाह

मिलान में चाहे सब गुण मिल रहों हों परन्तु वर कन्या की एक नाड़ी का प्रयन्तपूर्वक त्याग करना चाहिएं यह दोष दम्पत्ति के लिए अनिष्टकर/घातम माना जाता हैं नाड़ी दोष में एक ही नक्षत्र और समान नक्षत्र चरण होने पर भी सभी आचार्यो में एकसम से अनिष्टकारी कहा हैं।

नाड़ी दोषापवाद एवं परिहार-

1. वर कन्या की एक ही राशि हो परन्तु नक्षत्र अलग अलग हों।

2. वर कन्या दोनों का जन्म नक्षत्र एक हो परन्तु राशियॉ भिन्न भिन्न हों तो नाड़ी दोष अविचारणीय हैं।

3. वर कन्या दोनों का नक्षत्र एक हो परन्तु चरण भिन्न भिन्न हों

4. यदि वर कन्या दोनों की एक राशि हो परन्तु नक्षत्र भिन्न भिन्न हो अथवा यदि दोनों का नक्षत्र एक हौ और राशि अलग अलग हो एंव च नक्षत्र चरण भिन्न पाद भेद हो तो ऐसी स्थिति में नाड़ी एंव गण दोष नहीं होता अर्थात शुभ होता हैं।

यद्यपि वर कन्या का एक ही नक्षत्र अथवा एक ही राशि का होने से नाड़ी दोष का परिहार माना गया हैं परन्तु यदि दोनों के नक्षत्र चरणों में समानता हैं अथवा नक्षत्रों में पाद वेध हो तो विवाह सर्वदा त्याज्य एंव वर्जित होगा- नोट -ध्यान रहें किसी नक्षत्र के प्रथम पाद और चतुर्थ पाद तथा दूसरें एवं तीसरे पाद में परस्पर वैध होना भी पाद वेध कहलाता हैं।

5. वर कन्या के नक्षत्र चरणों के 1 और 4,2 और 3 तथा 4 और 1,3 और 2 चरणों के माध्य ही पादवेध चरणों का विचार करना अनिवार्य होता हैं, इसके अतिरिक्त अन्य नक्षत्र चरणों के वेध जैसे 1 और 3, 2 और 4 नक्षत्र चरणों में वेधाभाव होने के कारण स्वल्पदोष रह जाता हैं। रोहिणी, मृगशिरा आर्द्रा,ज्येष्ठा, कृतिका, पुष्य, श्रवण, रेवती, एवं उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रों में उत्पन्न वर कन्या को नाड़ी दोष नहीं लगता।

1. वर्ण दोष का परिहार -

वर की राशि के वर्ण से कन्या की राशि का वर्ण उत्तम होने पर वर्ण दोष होता हैं। लोकिन यदि वर के राशीश का वर्ण कन्या के राशीश के वर्ण से उत्तम हो तो वर्ण दोष का परिहार हो जाता हैं। सभी ग्रहों के वर्ण इस प्रकार हैं- रवि का वर्ण क्षत्रिय चन्द्र का वैश्यः मंगल का क्षत्रिय बुध का शुद्र गुरू का ब्राह्मण शुक्र का ब्राह्मण और शनि का शूद्र हैं।

2.वश्य दोष का परिहारः -

वर कन्या की राशियों की योनिमैत्री होने पर वश्य दोष दूर हो जाता हैं।

3. तारा दोष का परिहारः -

वर कन्या के राशीशों नवमांशेशों की मैत्री या एकता के अलावा तारा दोष का दूसरा कोई परिहार नहीं हैं।

4. योनि दोष का परिहारः -

भकूट और वश्य कूटों में से कोई एक भी यदि शुभ (ठीक) ही तो योनिदोष का परिहार हो जाता हैं।

5. राशीश दोष का परिहारः -

भकूट शुभ होने पर (यानि द्विद्र्वादश, नवंपचम और शताष्टक का अभाव होन पर) राशीश दोष दूर हो जाता हैं।

6. गण दोष का परिहारः -

वर-कन्या की राशि एक और नक्षत्र भिन्न - भिन्न हो या भकूट दोष न हों तो गणदोष दूर हो जाता हैं।

7. भकूट दोष का परिहारः -

वर कन्या के राशीशों नवांशेशों की मंत्री या एकता ही भकूट दोष का प्रमुख परिहार हैं। यदि इसके साथ ताराशुद्धि या वश्यशुद्धि भी हो तो भकूट दोष का उत्तम परिहार माना जाता हैं।

8. नाड़ी दोष का परिहारः -

वर कन्या की राशि एक और नक्षत्र भिन्न भिन्न हो तो अथवा नक्षत्र एक और राशियां भिन्न भिन्न हो तो नाड़ी दोष दूर हो जाता हैं। दोनों के नक्षत्रों के चरणों का वेध न होने की स्थिति में भी नाड़ी दोष का परिहार माना जाता हैं। नाड़ी दोष के परिहार के प्रसंग में वर कन्या में से किसी एक का जन्म नक्षत्र के प्रथम चरण में और दूसरें का चतुर्थ चरण में अथवा का एक दूितीय चरण में और दूसरे का तृतीय चरण में हुआ हो तो पादवेध मान लिया जाता हैं। नाड़ी दोष मुख्य रूप ब्राह्मणों के लिये माना जाता है।

अन्य मत से भकूट परिहार –

> **प्रोक्ते दुष्टभकूटके परिणयस्त्वेकाधिपत्ये शुभे।**
> **ऽथोराशीश्वरसौहृदेऽपि गदितो नाड्यृक्षशुद्धिर्यदि ।।**
> **अन्यर्क्षेऽशपयोर्बलित्वसखिते नाड्यृक्षशुद्धौ तथा।**
> **ताराशुद्धिवशेन राशिवशताभावे निरूक्तो बुधैः ।।**

अर्थात् स्त्री पुरूष दोनों की परस्पर षडष्टक राशियों का अधिपति यदि एक ही ग्रह हो तो दुष्ट भकूट का दोष नहीं होता। जैसे वर की राशि मेष या वृष, कन्या की वृश्चिक या तुला आदि। जैसे द्विर्दादश दोष में मकर कुम्भ राशियों का एकाधिपत्य शनि का है अत: मकर कुम्भ राशियों के वर – कन्याओं का भी द्विर्दादश दोष नहीं होगा। नवम, पंचम दोष की राशियों में एकाधीशत्व प्राप्त ही नहीं होता। वर – कन्या की षडष्टक, द्विर्दादश और पंचम राशियों के अधिपति ग्रहों की परस्पर मित्रता होने पर भी उक्त षडाष्टकादि दोषों का परिहार हो जाता है। जैसे - वर – कन्या की मीन, मेष, मेष धनु ,

मीन मेष आदिकों में क्रमश:षडष्टक, नव पंचम और द्विर्दादश दोष नहीं होते क्योंकि राशि स्वामियों में परस्पर मित्रता है।

वर कन्या का परस्पर नाड़ी वेध न हो। अर्थात् वर – कन्या दोनों के नक्षत्र एक नाड़ी में न पड़ते हों तभी षडष्टकादि उक्त दोषों का परिहार होगा। नाड़ीदोष विद्यमान होने पर षडष्टकादि उक्त कूट दोष परिहार अविचारणीय है।

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वर एवं कन्या के अष्टकूट का विचार करते हुए उसके दोष व उसके परिहार का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये। इस इकाई में आइये अष्टकूट के दोषों का परिहार की चर्चा करते है। यदि देखा जाये तो ज्योतिष के समस्त ग्रन्थों में मेलापक एवं मुहूर्त ग्रंथों में अष्टकूट दोषों के साथ ही उनके परिहारों का वर्णन भी किया गया है। परिहार उपलब्ध होने पर दोष कि निवृति मान कर उसके आधे गुण ग्रहण करने का शास्त्र उपदेश देते हैं। कुल 36 गुणों में से 18 से 21 तक गुण मिलने पर मिलान मध्यम तथा इस से अधिक होने पर उत्तरोतर शुभ मिलान होता है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

परिहार – उपाय, निदान

मेलापक - वर – कन्या का विवाहार्थ कुण्डली मिलान

निवृत्ति – छुटकारा

उत्तरोत्तर - क्रमश:

राशीश - राशी का स्वामी

परस्पर - एक दूसरे के

षडाष्टक - षष्ठ और आठवें का योग

द्विर्दादश – द्वितीय और द्वादश का योग

ग्राह्य – ग्रहण करने योग्य

त्याज्य – छोड़ देने योग्य

वर्ण - जाति, रंग

वेधाभाव – वेध का अभाव

भकूट - राशिकूट

अन्यर्क्षे - अन्य नक्षत्रों में

विरोधाभाव – विरोध का अभाव

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. क
4. ख
5. क

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. मेलापक मीमांसा

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्त पारिजात
2. मुहूर्त्त गणपति
3. मेलापक मीमांसा

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अष्टकूट परिहार से आप क्या समझते है ?
2. वश्य, तारा, एवं भकूट दोष का परिहार लिखिये।
3. अष्टकूट दोष परिहार का विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिये।

इकाई – 5 वैधव्य एवं विधुर योग विचार

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 वैधव्य एवं विधुर योग परिचय

 अभ्यास प्रश्न

5.4 सारांश

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के प्रथम खण्ड की पंचम इकाई 'वैधव्य एवं विदुर योग विचार' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने अष्टकूट दोष परिहार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, इस इकाई में आप वैधव्य एवं विदुर योग का ज्ञान प्राप्त करेगें।
जिस पुरूष की पत्नी की मृत्यु हो जाती है, उसे विदुर तथा जिस स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती है, उसके कुण्डली में विधवा योग या वैधव्य योग कहा जाता है।
इस इकाई में आप वैधव्य एवं विधुर योग का ज्ञान प्राप्त करने जा रहे है। आशा है पाठकगण इसे अच्छी तरह से समझ सकेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- वैधव्य क्या है।
- विधुर योग से क्या तात्पर्य है।
- वैधव्य एवं विदुर योग कुण्डली में कैसे होता है।
- वैधव्य एवं विदुर का निदान पक्ष क्या है।
- ज्योतिषक्त वैधव्य एवं विदुर योग के अन्तर्गत क्या – क्या होता है।

5.3 वैधव्य एवं विधुर योग

वैधव्य एवं विधुर योग एक प्रकार का 'अशुभ योग' है। कन्या की कुण्डली में 'वैधव्य' या विधवा योग होता है तथा पुरूष के कुण्डली में 'विधुर' या विदुर योग होता है। ज्योतिष शास्त्र में वर – कन्या के विवाह के पूर्व उनकी कुण्डली परीक्षण कर यह देखा जाता है, कि दोनों की कुण्डली में इस प्रकार का योग हैं या नहीं। सामान्य रूप से भी हम जानते हैं कि जिस कन्या के पति की मृत्यु हो जाती है, उसे विधवा तथा जिस पुरूष की पत्नी मर जाती है, उसे विदुर कहते है। वैधव्य योग के अन्तर्गत कई प्रकार के योग आते है –
यथा - विषकन्या योग, मंगली योग, विधवा योग, पतिहन्ता योग आदि। उसी प्रकार पुरूष की कुण्डली में सप्तम एवं अष्टम भाव का विचार कर विधुर योग का निर्णय किया जाता है।
आचार्य कल्याणवर्मा ने सारावली में कहा है कि –

वैधव्यं निधने चिन्त्यं शरीरं जन्मलग्नत:।
सप्तमे पतिसौभाग्यं पंचमे प्रसवस्तथा ॥

अर्थात् इस श्लोकानुसार वैधव्य का विचार अष्टम स्थान से करना चाहिये । इसी क्रम में आइये सर्वप्रथम मांगलिक योग का विचार करते है -

मंगल अगर जन्म कुंडली में 1,4,7,8,12 भाव में हो तो जातक 'मांगलिक' कहलाता है । (दक्षिण भारतीय पद्दति में दूसरे भाव का मंगल भी मंगली दोष में गिना जाता है) यह एक सामान्य नियम है। इन भावों में मंगल 'मंगली दोष क्यों बनता है? इसका जवाब है - मंगल का दृष्टि प्रभाव। जैसा की हम जानते हैं कि मंगल अपने से चौथे, सातवें, और आठवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता है और मंगल कि दृष्टि में संहारक प्रभाव होता है इस आधार पर-

प्रथम भाव का मंगल **चौथे भाव** (परिवार व सुख), **सातवें भाव** (जीवन साथी व प्रणय), तथा **आठवें भाव** (आयु एवं मृत्यु का कारण) को देखता है। परिणामतः जातक के ये तीनों भाव संहारक प्रभाव में आ जाते है। इसी प्रकार **चौथे भाव** का मंगल **सातवें भाव** (जीवनसाथी), **दसवें भाव** (पिता और कर्मक्षेत्र), तथा **ग्यारहवें भाव** (आय/लाभ स्थान) को संहारक प्रभाव में लाता है। **सातवें भाव** का मंगल **दसवे भाव**, **लग्न** (जातक स्वयं) तथा **दूसरे भाव** (धन/कुटुंब का भाव) को मारक प्रभाव में लाता है। **आठवें भाव** का मंगल **ग्यारहवें भाव**, **दूसरे भाव**, तथा **तीसरे भाव** (छोटे भाई एवं संघर्ष क्षमता) को मारक प्रभाव में लाता है तथा **बारहवें भाव** का मंगल **तृतीय भाव**, **छठें भाव** (रोग, ऋण, शत्रु, शोक) तथा **सप्तम भाव** को प्रभाव में (मारक) लेता है। **दूसरे भाव** का मंगल **पांचवें भाव** (संतान व शिक्षा), **आठवें भाव** तथा **नौवें भाव** (भाग्य एवं जनक) को मारक प्रभाव में लेता है। (दक्षिण भारतीय इसलिए दूसरे भाव के मंगल को भी मंगली मानते हैं)

आठवां भाव स्त्री के वैधव्य को भी दिखता है तथा जातक की आयु को भी, अतः महत्वपूर्ण है। जातक की ससुराल भी यही भाव देखता है। सातवाँ भाव तथा लग्न पति व पत्नी दोनों को दिखता है। चौथा भाव जातक की माता, परिवार व सुख के अलावा जातक के ससुर का भी है। इसी प्रकार दसवां भाव जातक के पिता और कर्मक्षेत्र के अलावा जातक की सास का भी है। बारहवां भाव अस्पताल, खर्चे व शयनसुख का है। तीसरा भाव जातक के भाइयों, सहस व संघर्ष क्षमता के अलवान जीवनसाथी की भाभियों का भी है। इस प्रकार ये भाव मंगल के मारक प्रभाव में होने से पति, पत्नी, जेठ, देवर, भाई, सास, ससुर, माता, पिता,आदि की मृत्यु या उनको कष्ट, परिवार, गृहस्थ, व प्रणय सुख में अवरोध आदि का भी भय उत्पन्न कर देता है। अतः ऐसे जातक को मंगली कहा जाता है। उपाय रूप में मंगली का विवाह मंगली के साथ करने की प्रथा है, ताकि मंगली दोष आपस में कट जाए और मंगल का मारक प्रभाव निष्क्रिय हो जाये।

किन्तु आतंकित होने/करने के बजाय, मंगली दोष को गंभीरता से समझना चाहिए। 80% मामलों में **'मंगली दोष'** दिखता है, किन्तु होता नहीं है।

मंगल का अर्थ है कल्याण/शुभत्व, न की विनाश/अशुभता। अतः मंगल ग्रह को मूलतः अशुभ या विनाशक नहीं माना जा सकता। मंगल में सृजनात्मक शक्ति तथा विनाशात्मक शक्ति दोनों पाई जातीं है। अनेक कुंडलियों में मंगल संहारक होता है किन्तु बहुत सी कुंडलियों में सृजक अथवा

पोषक भी होता है। अतः मात्र उसके किसी भाव विशेष में बैठे होने से ही जातक को मंगली दोष से ग्रस्त मान लेना उचित नहीं है।

लाल किताब में इसीलिए मंगल को 'नेक' तथा 'बद' दो नामों से पुकारा गया है और दोनों के फल अलग-अलग कहे गए हैं।

यद्यपि ज्योतिष के प्राचीन ग्रंथों (होराशास्त्र, जातक पारिजात, आदि) में मंगल दोष क्रम में नहीं है। फलदीपिका, ज्योतिष सिद्धांत, सारावली, आदि प्राचीन ग्रंथों में भी मंगली दोष का ऐसा उल्लेख नहीं है। जन्मकुंडली के सातवें भाव में मंगल होने मात्र से ही जातक मंगली हो जाता है तो भगवान् राम को भी मंगली होना चाहिये था (उनकी कुंडली में मंगल सातवें भाव में बैठा था)। किन्तु न तो उनका विवाह विलम्ब से हुआ (जैसा की मंगली होने पर संभावित था) और न ही धर्मग्रंथों/रामायण, पुराण आदि में उनके मंगली होने का कोई प्रमाण मिलाता है। इससे स्पष्ट है कि मंगली दोष को ज्योतिष में बाद में शामिल किया गया होगा।

बहुत सारे मामलों में जातक पूरी तरह से मंगली नहीं होता (नवमांश, चन्द्र कुंडली व जन्म कुंडली इन तीनो में ही जातक मंगली हो या कम से कम दो में हो तभी उसे मंगली कहा जा सकता है। मात्र एक कुंडली के आधार पर नहीं)।

मंगल दोषकारी है या नहीं :- यदि मंगल त्रिकोणेश हो (1,5,9, में से किसी भाव का स्वामी हो) तब मंगल शुभ ही रहता है। यदि मंगल अनिष्ट स्थानों में बलवान होकर स्थित हो अथवा अनिष्ट स्थानों का स्वामी हो, तभी दोषकारी होता है। यदि मंगल सूर्य के साथ/पास होने से अस्त हो अथवा शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो भी दोषकारी नहीं होता।

इनके अलावा मंगल कि उच्च व नीच दृष्टि, उसका वक्री/मार्गी होना, स्वगृही/मित्रगृही/शत्रुगृही होना, या मूल त्रिकोण में होना, मंगल कि दृष्टियाँ तथा मंगल पर दृष्टियाँ, मंगल का योगकारक होना या न होना आदि भी विचारें और साथ ही 1,5,7,8,9,10,12 भावों और उनके भावेशों कि स्थिति भी विचारे तथा कुंडली में गुरु व शुक्र कि स्थिति भी विचार करें । तभी निर्णय लें ।

मंगली दोष के प्रभावः- मंगली दोष का जो सबसे बड़ा आतंक जनमानस में बैठाया गया है, वह है पति या पत्नी कि मृत्यु। किन्तु इसके लिए अकेले मंगल को ही उत्तरदायी कैसे ठहराया जा सकता है? अन्य विच्छेदक स्वाभाव वाले ग्रह - शनि, केतु, राहू तथा सूर्य कि स्थिति भी विचारानी चाहिये। सेक्स के करक व सौम्य ग्रह शुक्र और अतिसौम्य ग्रह गुरु कि स्थिति भी विचारानी चाहिये। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि कुंडली में वैधव्य योग, विधुर योग, या पुनर्विवाह का योग बनता है या नहीं तथा जातक कि कुंडली में 'अल्पायु योग' भी बनता है या नहीं। अगर ऐसा कोई भी योग नहीं है तो मंगल या कोई भी ग्रह विवाह होते ही पति/पत्नी कि मृत्यु कैसे करा सकते है? यही कारण है कि हमारे प्राचीन ज्योतिषाचार्यो -पराशर, जैमिनी, वराहमिहिर आदि ने मंगली दोष को महत्व नहीं दिया है ।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मंगली दोष का दुष्प्रभाव जातक को झेलना नहीं पड़ता है। प्रायः

विवाह में विलम्ब, विवाह में बाधाएं, गृहस्थ सुख का आभाव, वैवाहिक जीवन में अशांति/कलह/असफलता/ आदि के प्रभाव 'मंगली दोष' से ग्रस्त जातकों को झेलने ही पड़ते हैं (यहाँ तक कि मंगली दोष कट भी रहा हो तो भी कुछ न कुछ परेशानियाँ झेलनी ही पड़ती हैं)। लेकिन ऐसा नहीं है कि मंगल दोष के सभी मामलों में पति/पत्नी अथवा दोनों कि मृत्यु अनिवार्य ही हो। जैसा कि बाद के कुछ ज्योतिष्यों ने लोगो को भ्रमित कर दिया है। जिसका कोई ठोस आधार नहीं है। लग्न, चन्द्र, व शुक्र से मंगली दोष को देख लेना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न –

१. वैधव्य योग होता है –
   क. वर की कुण्डली में ख. कन्या की कुण्डली में
   ग.दोनों की कुण्डली में घ. कोई नहीं

२. सारावली नामक ग्रन्थ की रचना किसने की –
   क. कल्याणवर्मा ख.कमलाकर भट्ट
   ग. वराहमिहिर घ. राम दैवज्ञ

३. कन्या की कुण्डली में वैधव्य का विचार किस स्थान से किया जाता है –
   क. सप्तम स्थान ख. अष्टम स्थान
   ग. षष्ठ स्थान घ. पंचम स्थान

४. कुण्डली मांगलिक कब होता है।
   क. जब २,५,८,११ भावों में मंगल स्थित हो
   ख. जब १,४,७,८,१२ भावों में मंगल स्थित हो
   ग. जब १,४,७,१० भावों में मंगल स्थित हो
   घ. कोई नहीं

५. भद्रा तिथि है –
   क. १,११,६
   ख. २,७,१२
   ग. ६,९,१२
   घ. ३,८,१३

विषकन्या योग

सूर्य भौमिर्किवारेषुमिथी भद्राशतभियम् । आश्लेषा कृत्तिका नामे मत्र ज्ञाता विषांगना।।

कन्या का जन्म अगर सोम, मंगल या शनिवार के दिन हो तथा भद्रातिथी २,७,१२ हो तथा नक्षत्र कृतिका, आश्लेषा मूल, शततारका हो तो वह कन्या विषकन्या योग से पिड़ीत है । वार, तिथी, नक्षत्र मिलाकर ही विषकन्या योग होता है।

जर्नुलग्ने रिपुक्षेत्रे सांस्थितः पापखेचरः । द्विसास्मापि योगेऽस्मिन सन्जाता विषकन्या ॥

अगर जन्म शादी योग तथा शत्रु क्षेत्रमें पापग्रह आते है तो प्रथम श्लोक के अनुसार कौनसे दो योगानुसार कन्या विषकन्या योगी होती है।

लग्ने शनिचरो यस्या सूतेर्को नवमे कुंज। विषायव्या सापि नौद्वाहया त्रिविध विषकन्या॥

जिस कन्या की शादी राशी में शनी पंचम भावमें सूर्य और नवम स्थान में मंगल हो तो कन्या विषकन्या होती है। उपर दिये स्थितीयों में विषकन्या योग होता है।

विषकन्या योगमे जन्मी कन्या जिवित नही रहती। अगर धरतीपर जन्म ले तो वो अल्पायुषी होती है। ऐसी कन्या संपूर्ण पुरिवारको नष्ट करती है। या पीडा देती है। विवाह संस्कार के समय फेरो के वक्त अपने वर को नष्ट करती है। इस कन्या का वैवाहिक जीवन काफी कष्टमय होता है। अगर इस प्रकार का योग कन्या की कुंडली मे आ जाये तो उसका उपाय 'कुभविवाह' है।

विधवा योग -

१) जिस कन्याकी कुंडली मे सप्तम भावमें पापग्रहयुक्त मंगल ग्रह आते है। वह विवाहीत कन्या जवान होते ही बालविधवा होती है।

२) चंन्द्र के स्थानसे सातवे और आठवे स्थानपर पापग्रह आ जाये। मेष और वृश्चिक राशीयो मे राहू आठवे और बारवे स्थानपर आ जाये तो कन्या निश्चित विधवा होती है।

३) अगर शादी मकर है और उसके सप्तभाव मे कर्क राशी के साथ सूर्य-मंगल है। तथा चंद्र पापग्रह पिडीत है, तो यह योग आता है। कन्या मध्यम आयु में विधवा हो सकती है।

४) शादी और सप्तम भावमें अगर पापग्रह हो तो विवाहित स्त्री मध्यम आयु में विधवा हो सकती है।

५) आपकी कुंडली के सप्तम स्थानपर अगर पापग्रह है या चंद्रमा आठवें अथवा सप्तम स्थानपर है तो मध्यम आयु में विधवा योग आता है।

६) अगर अष्ट्माधिपती सप्तम भाव में हो और सप्तमेश में पापग्रह हो तो कन्या विवाह के तुरंत बाद विधवा होती है।

७) षष्ठ और अष्ठम स्थान के अधिपती अगर षष्ठ अथवा बारवे स्थान में पापग्रह है और सप्तम भावपर किसी भी ग्रह की शुभ दृष्टी न हो तो नववधू विधवा हो जाती है।

८) विवाह के दरम्यान सप्तम, अष्टम स्थानके स्वामी पापग्रह से पीडीत हो तो छटे और बारवे स्थापनर होकर भी विधवा योग आता है।

कन्याके जन्म लग्नमे सप्तमेश पापी या पापग्रहयुक्त हो और अनिष्टकारी (६,८,१२) स्थान मे हो तो पति सुखमें हानी होती है। उसीप्रकार लग्नस्थानपर या फिर सप्तमस्थानपर मंगल ग्रह आ जाये तो पतिसुखसे कन्या वंचित रहती है।

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रेचाष्टमे कुजः । कन्या भर्तुविनाशाय भर्ता विनाशकृंत ॥

अर्थात कुंडली में लग्न प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम और बारहवें स्थान में मंगल ग्रह आ जाये तो पति सुख में हानी होती है।

सप्तमभाव के उस नक्षत्र स्वामी २ या ७,११ मे से एक या तीनों का कार्य ६ या १२ दोनो भाव का हो तो अपेक्षित वैवाहिक सौख्यप्राप्ती नही होती। उसी प्रकार यदी वह उपनक्षत्र बुध हो या बुध नक्षत्र तथा राशी मे हो तो २ या १२ भाव का बलवान कार्ये हो तो एक ज्यादा विवाह योग होता है।

मुहूर्त्तचिन्तामणि के अनुसार वैधव्य योग -

ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ मुहूर्त्तचिन्तामणि में ग्रन्थकार आचार्य रामदैवज्ञ जी ने विवाहप्रकरण में प्रश्नलग्न से तीन प्रकार के वैधव्य योग का विचार करते हुये कहा है कि -

षष्ठाष्टस्थः प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुर्लग्ने क्रूरः सप्तमे वा कुजः स्यात्।
मूर्तावेिन्दुः सप्तमे तस्य भौमो रण्डा सा स्यादष्टसम्वत्सरेण ॥

१. प्रश्न लग्न से ६ वें या ८ वें स्थान में यदि चन्द्रमा हो
२. लग्न में कोई पापग्रह हो और उससे ७ वें स्थान में मंगल हो
३. चन्द्रमा प्रश्न लग्न में हो तथा ७ वें स्थान में मंगल हो तो

इन तीनों योगों में वह कन्या ८ वर्ष के भीतर विधवा होगी ऐसा कहना चाहिये।

विशेष – यह विचार प्रश्न लग्न ओर जन्म लग्न दोनों से करना चाहिये अर्थात् लग्न - सप्तम स्थानों में पापग्रह होने से लड़का – लड़की एक दूसरे के लिए शुभ फलप्रद नहीं होते हैं।

प्रश्न लग्न से कुलटा एवं मृतवत्सा योग –

प्रश्नतनोर्यदि पापनभोगः पञ्चमगो रिपुदृष्टशरीरः।
नीचगतश्च तदा खलु कन्या सा कुलटा त्वथवा मृतवत्सा ॥

यदि प्रश्न लग्न से ५ वें स्थान में पापग्रह हो तथा अपने शत्रु ग्रह से देखा जाता हो, अपनी नीच राशि में हो तो वह लड़की कुलटा व्यभिचारिणी अथवा मृतवत्सा होती है।

विशेष – मृतवत्सा उस स्त्री को कहते हैं जिसके बच्चे जन्म लेकर मर जाया करते है।

मूलादि विचार –

सुतः सुता वा श्वसुरं हतश्च श्वश्रूं च मूलाहिभवौ क्रमेण।
नान्त्यादिपादे पतिपूर्वजघ्नी ज्येष्ठानुजघ्नी द्विपजा न जूके ॥

अर्थात् मूल नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने ससुर के लिए अशुभ होती है। श्लेषा नक्षत्रोपत्नन वर – कन्या अपनी सास के लिए घातक होते हैं ।

लेकिन मूल के अन्तिम चरण व श्लेषा के प्रथम चरण में उक्त प्रभाव नहीं होता है। ज्येष्ठा नक्षत्र की कन्या अपने ज्येष्ठ के लिए व विशाखा के चतुर्थ चरण में उत्पन्न अपने देवर के लिए घातक होती है।

जिस प्रकार हम कुण्डली में देखकर कन्या का विचार करते हैं, ठीक उसी प्रकार वर का भी विचार करना चाहिये। अर्थात् उसी स्थान से पुरूष के विदुर योग को भी जानना चाहिये।

वैधव्य योग –

कन्या के जन्मांग में वैधव्य योग पर गंभीरतासे विचार करने के उपरान्त ही अनुकूल मेलापक करना उपयुक्त है । ज्योतिष के आधार ग्रन्थों में वैधव्य दोष के अनेक योगों का उल्लेख प्राप्त है । वैधव्य प्रदान करने वाले प्रमुख परीक्षित योगों का उल्लेख अग्रांकित है –

१. यदि सप्तमेश अष्टम भाव में अष्टमेश से युक्त होकर पाप दृष्ट हो तो वैधव्य का दारूण दु:ख सहन करना विवशता बन जाती है।
२. राहु ओर केतु सपतमभावगत हों तथा सूर्य सप्तमेश से युक्त होकर अष्टमेश से दृष्ट या संयुक्त हों तब भी वैधव्य का योग निर्मित होता है।
३. यदि लग्न, पाप ग्रह के नवमांश में संस्थित हो तथा मंगल अष्टम भाव में अष्टमेश से युक्त हो तो वैधव्य की सबल संभावना की संरचना होती है। यदि द्वितीय भाव में शनि भी हो तो विवाहोपरान्त शीघ्र ही वैधव्य की व्यथा की मर्मान्तक पीड़ा सहन करनी पड़ती है।
४. अष्टम भाव में राहु, मंगल एवं शनि की संस्थिति कन्या के पति के प्राण शीघ्र ही छीन लेती है ऐसी ही स्थिति तब उत्पन्न होती है जब शनि, मंगल और राहु सम्पन्न भाव में संयुक्त रूप से संस्थित हो।
५. सप्तमेश क्रूरग्रह हो तथा मंगल और शनि की युति सप्तम और अष्टम भाव में हो तो भी वैधव्य की सशक्त संभावना निर्मित होती है।
६. यदि सप्तमेश और सप्तम भाव पापग्रहों से युक्त हों तथा पापकर्तरी योगग्रस्त हों तो वैधव्य संभव होता है।
७. यदि सप्तमेश क्रूर नवांशगत हो, अस्त हो, पापाक्रानत हो या ग्रहणयोग की संरचना में सप्तमेश भी संलग्न हो जाता है।
८. यदि मंगल सप्तम भाव गत होकर पापाक्रान्त हो योगकारक न हो, न ही योगकारक ग्रहों से संलग्न हो तो वैधव्य योग की सृष्टि होती है।
९. वैधव्य योग के निर्माण में मंगल, राहु और शनि, केतु ऐसे क्रूर ग्रहों की प्रमुख भूमिका होती है । इन पापग्रहों का प्रभाव सप्तम एवं अष्टम भाव पर वैधव्य प्रदान करता है। परन्तु शुभ ग्रहों की दृष्टि अथवा युति, वैधव्य योग को निरस्त कर देती है। द्वितीय भाव में पापग्रह का भी अध्ययन करना चाहिए क्योंकि द्वितीय भाव सप्तम भाव से अष्टमस्थ होता है। अष्टमस्थ ग्रह द्वारा अधिष्ठित नवमांशाधिपति की दशा अन्तर्दशा में वैधव्य की संभावना

तीव्र होती है।

१०. यदि कन्या के जन्मांग में वैधव्य योग की संरचना हुई हो तो उसका विवाह ऐसे युवक के साथ करना चाहिए जिसके जन्मांग में वैधव्य योग का संतुलन पापग्रह की संस्थिति है। प्राय: उल्लेख प्राप्त होता है कि सप्तमस्थ मंगल से आक्रान्त कन्या का विवाह सप्तमस्थ मंगल के युवक से करने से मंगली या कुजदोष निरस्त हो जाता है। ऐसा ही अष्टमस्थ मंगल के दोष का निरस्तीकरण अष्टम भावगत मंगल से होने का कथन अनेक स्थलों पर उल्लेखित है। सप्तमस्थ या अष्टमस्थ मंगल होने पर ऐसे वर से विवाह सम्पन्न किया जाना चाहिए जिसके जन्मांग में सप्तम या अष्टम भाव में न हो बल्कि अन्यत्र संवेदनशील भाव में उपस्थित हों । यदि अष्टम भाव में वर का मंगल है तथा पत्नी का मंगल सप्तम या अष्टम भाव में वैधव्य योग की संरचना कर रहा है, तो विवाह के शीघ्र उपरान्त दुर्घटना के कारण पति की अल्प आयु में ही मृत्यु होती है।

११. सप्तमेश एवं अष्टमेश के मध्य विनिमय परिवर्तन भी दाम्पत्य जीवन को विसंगतिपूर्ण बनाता है। जीवन सहचर की मृत्यु भी संभव होती है यदि सप्तम और अष्टम भाव पापयुक्त तथा पापदृष्ट हों।

१२. पुरूषों के जन्मांग में शुक्र और सप्तमेश पर समान रूप से विचार करना चाहिए। यदि शुक्र पापकर्तरी योगग्रस्त हो या सप्तम भाव अथवा उसके स्वामी की भी स्थिति हो तथा द्वितीय भाव पापयुक्त हो तो पत्नी की मृत्यु शीघ्र होती है।

१३.शुक्र कर्क अथवा सिंह राशिगत हो तथा सूर्य और चन्द्र द्वारा पापाक्रान्त हो अथवा पापकर्तरी योगग्रस्त हो तथा पापदृष्ट भी तो पत्नी की मृत्यु का योग होता है। जन्मांग में शुक्र , चन्द्र और शुक्र की सप्तम भाव में युति भी अशुभ होती है। और यह युति यदि मंगल और केतु द्वारा सप्तम भाव में शुक्र चन्द्र और सूर्य की युति पापकर्तरी योगग्रस्त हो तो भी पत्नी की मृत्यु शीघ्र हो जाती है तथा दाम्पत्य सुख का अभाव रहता है।

१४.वैधव्य से संबंधित ग्रहों का मंगल के नवमांश में संस्थित होना वैधव्य की संभावना में प्रबलता उत्पन्न करता है।

१५.यदि शुक्र , शनि और मंगल से संयुक्त होकर सप्तमस्थ हो तो भी विवाह के शीघ्र उपरान्त, जीवन – साथी का निधन हो जाता है।

१६.यदि मंगल , राहु और शनि क्रमश: षष्ठ, सप्तम या अष्टम भावगत हो तो जीवन साथी की मृत्यु शीघ्र ही होता है।

१७. शुक्र का षष्ठस्थ होना उसी तरह से अशुभ होता है जिस तरह से मंगल का अष्टमस्थ होना शुक्र यदि सप्तमस्थ होकर षष्ठस्थ हो या पापदृष्ट हो तो दाम्पत्य जीवन में सुख का अभाव प्रारम्भ से ही दृष्टि गत होता है।

१८. यदि पंचमेश सप्तमस्थ हो तथा सप्तमेश क्रूर ग्रहों से संयुक्त हो तो पत्नी की मृत्यु संतानोत्पत्ति के समय जटिलता के कारण होती है।

१९.यदि शुक्र षष्ठेश से युक्त होकर क्रूरभावों में स्थित होता है या पापाक्रान्त भी होता है, तो पत्नी की मृत्यु का संकेत करता है।

यदि यह सभी योग शुभ ग्रहों के प्रभाव में हो शुभ नवमांश शुभ नक्षत्र अथवा शुभ भावाधिपति होकर वैधव्य योग अथवा जीवनसाथी की हानि का योग निर्मित कर रहे हों तो उसके प्रभाव में न्यूनता उत्पन्न होती है और जब यही ग्रह पापग्रह से दृष्ट अथवा युक्त हो अथवा जो ग्रह योग पत्नी अथवा पति के मृत्यु का संकेत कर रहे हैं व उपचय भावों के स्वामी हो या मारक भावों के अधिपति हों तो इन योगों के क्रूर प्रभाव में वृद्धि होती है।

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वैधव्य एवं विधुर योग एक प्रकार का 'अशुभ योग' है। कन्या की कुण्डली में 'वैधव्य' या विधवा योग होता है तथा पुरूष के कुण्डली में 'विधुर' या विदुर योग होता है। ज्योतिष शास्त्र में वर – कन्या के विवाह के पूर्व उनकी कुण्डली परीक्षण कर यह देखा जाता है, कि दोनों की कुण्डली में इस प्रकार का योग हैं या नहीं। सामान्य रूप से भी हम जानते हैं कि जिस कन्या के पति की मृत्यु हो जाती है, उसे विधवा तथा जिस पुरूष की पत्नी मर जाती है, उसे विदुर कहते है। वैधव्य योग के अन्तर्गत कई प्रकार के योग आते है – यथा - विषकन्या योग, मंगली योग, विधवा योग, पतिहन्ता योग आदि। उसी प्रकार पुरूष की कुण्डली में सप्तम एवं अष्टम भाव का विचार कर विधुर योग का निर्णय किया जाता है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

वैधव्य – विधवा योग

परीक्षण- जॉच

पतिहन्ता – पति का नाश करने वाली योग

सारावली - कल्याणवर्मा द्वारा लिखित ज्योतिष का ग्रन्थ

मांगलिक - अशुभ योग

श्लोकानुसार - श्लोक के अनुसार

दृष्टि - देखना

संहारक – नाश करने वाला

कर्मक्षेत्र – वह स्थान जहॉ कर्म किया जाता हो

अर्कि – शनि

अर्क - सूर्य

अतिसौम्य – अति सुन्दर

जनमानस - प्राणि लोग

विलम्ब - देर से

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. ख
5. ख

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. मेलापक मीमांसा

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्त पारिजात
2. मुहूर्त्त गणपति
3. मेलापक मीमांसा

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैधव्य योग क्या है ?
2. विदुर योग को लिखिये।
3. वैधव्य एवं विदुर योग का विस्तार पूर्वक उल्लेख कीजिये।

इकाई – 6 वैधव्य एवं विधुर योग परिहार

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के प्रथम खण्ड की षष्ठ इकाई 'वैधव्य एवं विदुर योग परिहार' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने वैधव्य एवं विदुर योग का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इस इकाई में आप उक्त योग के दोष का परिहार का ज्ञान प्राप्त करेगें। ज्योतिष शास्त्र में वैधव्य एवं विधुर योग के निदान पक्ष के अन्तर्गत उसके परिहार कहे गये है । इस इकाई में आप वैधव्य एवं विदुर योग परिहार ज्ञान प्राप्त करने जा रहे है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ परिहार क्या है।
- ❖ वैधव्य एवं विधुर योग के परिहार का प्रयोजन क्या है।
- ❖ किस प्रकार वैधव्य एवं विधुर योग का परिहार होता है।
- ❖ मानव जीवन में इसका क्या उपयोग है।
- ❖ उक्त विधि में क्या - क्या होता है।

6.3 वैधव्य एवं विदुर योग परिहार

पूर्व के अध्याय में आपने वैधव्य एवं विदुर योग का अध्ययन कर लिया है। यदि किसी वर – कन्या के कुण्डली में इस प्रकार का योग हो तो उसके परिहारार्थ क्या - क्या करना चाहिये। इसका ज्ञान आप प्रस्तुत इकाई में करने जा रहे हैं –

वैधव्य परिहारार्थ आचार्यों ने मुख्यत: तीन प्रकार के सूत्र को बतलाया है –

कुम्भ विवाह, अश्वत्थ विवाह एवं विष्णु प्रतिमा सह विवाह।

सर्वप्रथम विषकन्या योग के परिहारार्थ समझते है -

विषकन्या भंग योग

अगर पापग्रह सप्तम स्थान तथा सप्तमे शांत होकर विराजमान हो और वह पापग्रह दृष्ट हो फिर भी शुभग्रह के साथ होने से विषकन्या योग भंग पाता है। सप्तस्थान पति का स्थान होने से वहॉं से पति के सुख का विचार होता है। यह ध्यान मे रखना जरूरी है की सप्तम मे शुभग्रह होनेसे याफिर सप्तम पर शुभग्रह की दृष्टि पड़ने से पतिसुख में वृद्धि होती है। इस संबंध मे कल्याणवर्मा ने अपनी सारावली में अधिक विस्तृत पूर्ण लिखा है।

सारावली ग्रन्थ में लिखा है-

वैधत्व निधने चिन्त्यं, शरीर जन्मलग्नत: । सप्तमे पति पंचमे प्रसवस्था ।।

पुरूष के अष्टम भाव के अनुसार 'विधुरता' और स्त्री के अष्टम भाव के अनुसार 'वैधव्यता' का विचार किया जाता है। सप्तम स्थान के अनुसार स्थिती, संपदा, वैभव और पति के सौभाग्य का विचार किया जाता है। पंचम स्थान के अनुसार लड़का-लड़की के स्थिती का विचार किया जाता है। परंतु पति सुख का विचार करते समय स्त्री भाव को अत्यंत महत्व दिया जाता है। विषकन्या योग और वैधव्य योग के दोष निवृत्ती के हेतु धर्मशास्त्र यह कहता है -

सावित्र्यादिव्रतं कृंत्य वैधव्यदिनिवृत्तये । अश्वत्थादिभिद्वाह्या दधानां चिजीवने ॥१॥
बाल वैधव्ययोगे तु कुंभादुपतिमादिभिः । कृंत्वा ततः पश्चात कंन्योहयेति चापरे ॥२॥

वटसावित्री व्रत से पीड़ा का हरण हो सकता है। अश्वत्थ (पिपल) वृक्ष से विवाह या कुंभ विवाह करने और उसके बाद किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह करने से वैधव्य योग नही रहता है। इसी प्रकार "हे माद्री व्रतखंड" ग्रंथ मे "वैधव्य योग नाशक सावित्रीव्रत" पूजा लिखी गयी है। ग्रंथ कहता है जिस कन्या की कुंडलीयों मे विधवा योग है, उनके माता-पिता ने कन्या से एकांत मे "सावित्री व्रत" अथवा "पिपल व्रत" करवाकर दीर्घायु वर के साथ विवाह रचाना चाहिए।

नारी वा विधवा पुत्रीपुत्र विवर्जिता । सभर्तुका सुपुत्रा वा कुर्याद व्रतमिदं शुभम ॥

स्कंद पुराण का यह वाक्‌य है । उपर दिया व्रत विवाहित स्त्री, विधवा, कुमारी, वृध्दा, सुपुत्रवती और निपुत्रिक औरतें भी कर सकती है।

इस प्रकार का दूसरा व्रत "वैधव्या हर अश्वत्थव्रत" का उल्लेख ज्ञानभास्कर ग्रंथ में किया गया है। व्रत के अनुसार माता-पिता ने अपने कन्या से यह व्रत का संकल्प शुभमुहूर्त पर कन्या से करवा लेना चाहिए। इस व्रत का संकल्प रंगीन वस्त्र पहनकर ब्राम्हण द्वारा करना चाहिए। यह व्रत एक महीने तक किया जाता है। चैत्र तृतीया अथवा अश्विन तृतीया से लेकर अगले महिने की तृतीया तक यह व्रत करना चाहिए। यह पूजा पीपल के पेड़ के नीचे करनी चाहिए। अगर पीपल न हुआ तो शमी या बेर के वृक्ष के नीचे भी ये पूजा कर सकते है। पूरे महिने तक प्रतिदिन पूजा करने से अवश्य पति सुख प्राप्त होता है

वैधव्य हरकंर्कटीव्रत

व्रतराज ग्रंथ में और एक व्रत दिया गया है। सूर्य जब राशी मे प्रवेश करेगा तब कन्या ने स्नान करके कच्चे चावल के दानों से (अक्षदा) अष्टदल बनाकर सोने की कर्कटी (ककडी) की स्थापना कर उसकी पूजा करनी चाहिए । विधिवत व्रत करके स्वर्ण कर्कटी (ककडी) सहीत ग्यारह कर्कटी (ककडी) ब्राम्हणों को दान दे। इस व्रत से वैधव्य योग की शांती होती है।

उसी प्रकार "मार्कण्डेय पुराण" में "कुंभ विवाह", "'विष्णुविवाह", 'अश्वत्थ विवाह" यह तीन परिहार व्रतों की विधिया दी गयी है। इन तीनों व्रतों मे "गणपती पुजन", "पुण्याह वाचन", "मातृ का पूजन", "वर्सोधारा पूजन", "नांदीश्राध्द", "सुवर्णमयी विष्णु पूजन", करके हवन आदी करने के बाद ही आगे के कर्म करने के लिये कहा गया है।

अर्क विवाह –

जिस प्रकार स्त्री के कुंडली मे 'विषकन्या योग' होता है उसी प्रकार पुरुषों की कुंडलीमें "विधुरयोग" होता है। जिस प्रकार स्त्रियों की कुंडली मे वैधव्य योग देखा जाता है। उसी प्रकार पुरुषों की कुंडली में विधुर योग देखा जाता है। अगर पुरुष को एक से ज्यादा विवाह करके भी पत्निसुख प्राप्त नही होता है तो उस पुरूष का विवाह अर्क (रुई) के पेड़ के साथ करा के दुसरी कन्या के साथ विवाह करना चाहिए। कुंभविवाह के जैसा ही यह अर्क विवाह सप्तभाव के जन्मदोष या अरिष्ट निवारण का उत्तमोत्तम परिहार है।

मुहूर्त कालविचार

आदित्य दिवसे वापि हरपक्षे वा शनिश्वरे ॥

"अर्क विवाह" शनिवार, रविवार, हस्त नक्षत्र तथा शुभदिन में ही किया जाता है।

मंगल दोष के परिहार -

मंगल दोष का जनमानस में भय के इतने सशक्त सूत्र प्रारोपित कर लिये हैं कि मंगली जातक अथवा जातिका का विवाह एक दुर्धर्ष समस्या बन जाती है। किन्तु सुविधानित माध्यमों से विचार करने पर इसके परिहार के अनेकानेक बिन्दु स्पष्ट हो जाते है। मंगल दोष को सुनिश्चित करने के अनन्तर निम्नांकित निदानों का आचार्यानुमोदित उपयोग व प्रयोग करना चाहिये।

मंगलचण्डिका स्तोत्र -

मंगलदोष से संतप्त जातिकाओं के उपयोग हेतु मंगलचण्डिका स्तोत्र का पाठ अत्यन्त उपयोगी व लाभदायक है। सघन मंगली कन्या के जनमांगमे, यदि पार्थक्य अथवा वैधव्य की संभावना हो, अथवा हिंसा, अत्याचार, अन्याय, दुर्धर्ष वेदना के दुर्योग हों, तो मंगलचण्डिका स्तोत्र का पाठ करने से दाम्पत्य जीवन के समस्त उपद्रवों का शमन – दमन होता है। सुखमय वैवाहिक जीवन व्यतीत कर रही कन्याएँ, युवतियॉ अथवा महिलाएँ भी यदि मंगलचण्डिका स्तोत्र का नियमित पाठ करें, तो जीवन में हर्ष और उल्लास की निरनतर वृद्धि होती है। प्रत्येक स्थिति में 'मंगलीदोष' का परिहार होता है तथा दाम्पत्य जीवन आनन्ददायक चेतना – सिन्धु में रूपान्तरित हो उठता है।

जिन अविवाहित कन्याओं के जन्मांग में मंगल सप्तम, अष्टम अथवा लग्नगत हो एवं सप्तम भाव पापाक्रान्त हो, तो विवाहोपरान्त अनिष्ट की अत्यधिक संभावना होती है। ऐसी कन्याओं को मंगलचण्डिका स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। यदि संस्कृत के इस पाठ को करने में जिन्हें असुविधा हो अथवा उच्चारण में त्रुटि का भय लगे, तो मंगलागौरी मन्त्र का एक माला अर्थात् १०८ बार जप करना चाहिये। मंगलचण्डिका, पार्वती देवी का ही रूप है। अत: पार्वती देवी या माता गौरी का षोडशोपचार या पंचोपचार पूजन करने के उपरान्त अनुकूल मुहूर्त्त में मंगलचण्डिका मन्त्र एवं स्तोत्र का पाठ करना उपयुक्त तथा शीघ्र फल प्रदाता होता है।

मन्त्र -

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मंगलचण्डिके।
हारिके विपदां राशेः हर्षमंगलकारिके ।।
हर्षमंगलदक्षे च हर्षमंगलदायिके।
शुभे मंगलदक्षे च शुभे मंगलचण्डिके।।
मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले।
सदा मंगलदे देवि सर्वेषां मंगलालये।।

मंगलचण्डिका स्तोत्र विधि –

पवित्र होकर लाल ऊनी आसन पर लाल वस्त्र पहन कर सामने घी का, तीन या पॉच बत्ती वाला दीपक प्रज्वलित करें, देवी का ध्यान करते हुए मंत्र का जप २१ या १०८ बार करें। तत्पश्चात् स्तोत्र का पाठ सहस्र संख्या में करना चाहिये। अनुष्ठान के नियमों का पालन किया जाय, लाल वस्तुओं का दान, लाल वस्तुओं का ही भोजन करें। अन्त में हवनपूर्वक ब्राह्मण भोजन कराएँ। मंगलवार के दिन ही प्रारम्भ करके मंगलवार के दिन ही समापन करें।

मूल मन्त्र के एक लक्ष जप से भी उक्त लाभ होता है।

मंगलचण्डिका स्तोत्र -

ऊॅ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मंगल चण्डिके।
ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः।।

मूल मन्त्र –

ऊॅ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मंगल चण्डिके ऐं क्रूं फट् स्वाहा।
पूज्यः कल्पतरूश्चैव भक्तानां सर्वकामदः।
दश लक्ष जपेनैव मन्त्र सिद्धिर्भवेनृणाम् ।।
मंत्र सिद्धिर्भवेद् यस्य स विष्णुः सर्वकामदः।
ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम्।।

कुम्भ अथवा विष्णु प्रतिमा विवाह –

यदि कन्या भीषण मंगल दोष – दूषित हो, तो भावी सौभाग्य को समयोचित करने के लिए कुम्भ, पीपल अथवा विष्णु की प्राणप्रतिष्ठा प्रतिमा के साथ परिक्रमा करके चिरंजीव वर के साथ परिणय संपन्न हो, तो दोष प्रभावी नहीं होता है। पुनर्विवाह का दोष भी अक्षेपित होने से मुक्ति मिलती है।यह क्रिया अत्यन्त गुप्त रूप से सम्पन्न होना चाहिए। उल्लेखनीय है कि कन्या स्वयं आस्पत

(कुम्भ, पीपल, विष्णु) का वरण करें । पिता इसमें निष्क्रिय रहे। क्योंकि शास्त्राज्ञानुसार कन्या का दान एक बार ही किया जाता है। यदि वर से पूर्व आस्पद को कन्या दान दे दिया जाएगा, तो पुन: दान का महापाप आरोपित होगा । अतएव पूर्व परिणय में कन्या स्वयं वरण करे, किन्तु यह परिणय संपूर्ण विधि – विधान के साथ निष्पन्न हो । अथवा दोष का प्रामाणिक परिहार नहीं होगा । गोपनीयता इस विधि की प्राथमिक और अंतिम प्रतिज्ञा होनी चाहिए। परिणय के निमित्त प्रेषणीय लग्न पत्रिका से पूर्व यह परिहार प्रक्रिया सम्पन्न होनी चाहिये।

अभ्यास प्रश्न -

१. अश्वत्थ कहा जाता है –
   क. पीपल वृक्ष को ख. वट वृक्ष को
   ग. अश्व को घ. शम्मी को
२. पुरूषों के लिये कुण्डली के किस भाव से विदुर योग देखा जाता है –
   क. सप्तम भाव ख. अष्टम भाव
   ग. नवम भाव घ. दशम भाव
३. कुम्भ विवाह किस पुराण से उद्धृत है –
   क. विष्णु पुराण ख. कूर्म पुराण
   ग. मार्कण्डेय पुराण घ. कोई नहीं
४. अर्क विवाह द्वारा होता है –
   क. वैधव्य योग का परिहार ख. विदुर योग का परिहार
   ग. दोनों घ. दोनों नहीं
५. मंगला गौरी की पूजन में किस रंग का वस्त्र धारण करना चाहिये –
   क. लाल ख. हरा
   ग. पीला घ. काला

विषकन्या का विवाह विषपुरूष से ही –

विषकन्या से तात्पर्य है ऐसे योग में जन्मी कन्या जिसके संसर्ग से सम्बन्धित व्यक्ति का विनाश हो जाये। जीवन, धन, समृद्धि, सम्पत्ति आदि का क्षय हो। यदि किसी कन्या के जन्मांग में विषकन्या योग विद्यमान होने से से कन्या के जन्मांग में अग्रांकित योगों के विद्यमान होने से कन्या को

विषकन्या की संज्ञा प्रदान की जाती है तथा पुरूष को इन्हीं योगों के जन्मांग में श्रेष्ठ होने से विषपुरूष की संज्ञा प्रदान की जाती है जिस प्रकार मंगली कन्या का विवाह मंगली युवक से करना चाहिए उसी प्रकार विषकन्या का विवाह विषपुरूष के साथ करने से सुखमय दाम्पत्य की संरचना होती है।

विषकन्या योग की संरचना तब होती है जब किसी कन्या का जन्म उस समय हो, जब एक शुभ ग्रह और पापी ग्रह लग्न में हो तथा दो पापीग्रह शत्रुराशि में हों या कन्या का जन्म आश्लेषा, कृत्तिका या शतभिषा नक्षत्र में रविवार, शनिवार या मंगलवार को द्वितीया, सप्तमी या द्वादशी तिथि को हो तो वह कन्या विषकन्या के नाम से जानी जाती है । विषकन्या आभाहीन, भाग्यहीन, मृतवत्सा तथा अभागी होती है । यदि कोई शुभ ग्रह चन्द्रमा से सप्तमेश या सप्तमेश या सप्तम स्थान में हो तो विषयोग का फल नष्ट हो जाता है ।

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि यदि किसी वर – कन्या के कुण्डली में इस प्रकार का योग हो तो उसके परिहारार्थ क्या - क्या करना चाहिये । वैधव्य परिहारार्थ आचार्यों ने मुख्यत: तीन प्रकार के सूत्र को बतलाया है – कुम्भ विवाह, अश्वत्थ विवाह एवं विष्णु प्रतिमा सह विवाह । मंगल दोष का जनमानस में भय के इतने सशक्त सूत्र प्रारोपित कर लिये हैं कि मंगली जातक अथवा जातिका का विवाह एक दुर्धर्ष समस्या बन जाती है । किन्तु सुविधानित माध्यमों से विचार करने पर इसके परिहार के अनेकानेक बिन्दु स्पष्ट हो जाते है । मंगल दोष को सुनिश्चित करने के अनन्तर निम्नांकित निदानों का आचार्यानुमोदित उपयोग व प्रयोग करना चाहिये । मंगलदोष से संतप्त जातिकाओं के उपयोग हेतु मंगलचण्डिका स्तोत्र का पाठ अत्यन्त उपयोगी व लाभदायक है । सघन मंगली कन्या के जनमांगमे, यदि पार्थक्य अथवा वैधव्य की संभावना हो, अथवा हिंसा, अत्याचार, अन्याय, दुर्धर्ष वेदना के दुर्योग हों, तो मंगलचण्डिका स्तोत्र का पाठ करने से दाम्पत्य जीवन के समस्त उपद्रवों का शमन – दमन होता है ।

6.5 पारिभाषिक शब्दावली

परिहारार्थ – परिहार के लिये

विदुरता - जिस पुरूष की स्त्री की मृत्यु हो गयी हो, वह विदुरता को प्राप्त है

शुभग्रह – पूर्णचन्द्र, बुध, शुक्र, गुरू

मुहूर्त्तचिन्तामणि - मुहूर्त ग्रन्थ

सावित्री - वैधव्य योग परिहारार्थ व्रत

व्रतमिदं - यह व्रत

विवर्जित - जो विशेष रूप से वर्जित हो

चिरायु – लम्बी आयु

आचार्यानुमोदित – आचार्य द्वारा अनुमोदित

सुपुत्रवती – अच्छी सन्तानों को देने वाली

श्रेयस्कर - पर्याप्त

समापन – अन्त

अनिष्टकर - अनिष्ट करने वाला

अग्रांकित - आगे अंकित

दुर्धर्ष – जो शीघ्र वश में न आये

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. ख
5. क

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. मेलापक मीमांसा

6.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्त पारिजात
2. मुहूर्त्त गणपति
3. मेलापक मीमांसा

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैधव्य योग परिहार का उल्लेख कीजिये ?
2. वैधव्य एवं विदुर योग को स्पष्ट कीजिये ।

खण्ड - 2

विवाह मुहूर्त्त

इकाई – 1 विवाह प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'विवाह प्रयोजन' शीर्षक से सम्बन्धित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपको मूल रूप से गृहस्थ जीवन में प्रवेश के लिये जानकारी प्राप्त होगी तथा विवाह का प्रयोजन क्या है इसके बारे में जानेंगे चूँकि वैवाहिक बन्धन जीवन का सबसे महत्वपूर्ण बन्धन है। विवाह प्रेम तथा स्नेह पर आधारित एक बन्धन है। यह वह पवित्र बन्धन है। जिस पर सम्पूर्ण परिवार का भविष्य निर्भर करता है इसलिए इसका विचार बहुत ही महत्वपूर्ण है। सामान्य प्रकार से कुण्डली में अष्टकूट एवं मांगलिक दोष भी देखा जाता है, और उसका निदान भी अवश्य कर लेना चाहिये।
सृष्टि चक्र को अनवरत् चलाने के उद्देश्य से विवाह संस्कार का जन्म दिया गया विवाह संस्कार का उद्देश्य यह था कि स्त्री और पुरूष के मध्य नैतिक सम्बन्ध स्थापित हो ताकि समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो। इन सभी विषयों की जानकारी आप लोगों को बहुत ही सरलतापूर्वक इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जानकारी होगी।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपलोग विवाह प्रयोजन को भली – भॉति जानेंगे। साथ ही -

1. विवाह से सम्बन्धित भाव तथा भावेश की जानकारी पायेगें।
2. विवाह योग की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. कुण्डली के अनुसार स्त्री संख्या तथा स्त्रियों में रोग का विचार कर पायेंगे।
4. दाम्पत्य भाव में स्थित ग्रहों के फल जानेंगे तथा विवाह कितने प्रकार के होते है। इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. विवाह प्रयोजन में गुरू – शुक्र का प्रभाव जानेंगे।
6. विवाह के लिए प्रश्न कुण्डली विचार करेंगे साथ ही उत्तम विवाह के लिए ग्रह स्थिति की जानकारी प्राप्त होगी।
7. जीवन साथी की आयु के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
8. कुण्डली मिलाने की जानकारी प्राप्त होगी।

1.3 विवाह प्रयोजन

सृष्टि चक्र को अनवरत चलाने के उद्देश्य से विवाह संस्कार का जन्म दिया गया, विवाह संस्कार का उद्देश्य यह था कि स्त्री और पुरूष के मध्य नैतिक सम्बन्ध स्थापित हो ताकि समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो।
आज भी हर माता – पिता अपने युवा पुत्र ओर पुत्री को अपनी नैतिक और सामाजिक जिम्मेदारी मानते हुए समय पर उनकी शादी करना चाहते है। हालांकि आज परिस्थितियॉं काफी बदल गयी है। लड़के – लड़कियॉ अपने लिए जीवनसाथी की तलाश खुद ही करने लगे है। जिससे प्रेम विवाह का

प्रचलन बढ़ता जा रहा है। बदलते सामाजिक परिवेश में आज भी ऐसे किस्से काफी सुनने में आते है कि अमुक व्यक्ति ने विवाह नहीं की अथवा उनका विवाह काफी विलम्ब से हुआ आदि आदि। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस प्रकार की सभी घटनायें कुण्डली में स्थित ग्रहों की स्थिति पर निर्भर करती है। जब कि प्रश्न कुण्डली के अनुसार विवाह का विचार सप्तम भाव के साथ ही पत्नी के कारक ग्रह शुक्र के स्थिति पर भी विचार करेंगे। इसी प्रकार जब लड़की के विवाह के सम्बन्ध में आंकलन करेंगे तो सप्तम भाव के साथ – साथ पति के कारक ग्रह वृहस्पति के स्थिति पर भी दृष्टि डालेंगे। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जब लग्नेश सप्तमेश एवं शुक्र बलवान होकर लग्न या सप्तम भाव से सम्बन्ध स्थापित करते हो तो पुरूष को उसकी जीवन संगिनी मिल जाती है। आजकल प्रेम विवाह का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। इस विषय में यह जानने की आपकी इच्छा होगी कि किन स्थितियों में प्रेम विवाह हो पाता है। अत: प्रेम विवाह भी इसी भाव से विचार किया जाता है। परन्तु सप्तम भाव के साथ पंचम भाव का भी आकलन किया जाता है। प्रश्न कुण्डली विचारानुसार पंचम भाव या पंचमेश विचारानुसार इनकी दृष्टि या युति या लग्नेश से बने या सप्तम भाव या सप्तमेश से सम्बन्ध स्थापित होने पर प्रेम विवाह होने की सम्भावना बनती है। कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति को दूसरी शादी भी करनी पड़ती है। दूसरी शादी के सम्बन्ध में जब विचार किया जाता है तो उस समय कुण्डली में सप्तम भाव के साथ ही द्वादश भाव के स्थिति पर भी विचार किया जाता है। विवाह के लिए केवल भाव / भावेश ही नहीं बल्कि अन्य ग्रहों का योगदान देखा जाता है। यदि अन्य ग्रह भावेश या लग्नेश का मित्र है तो विवाह में सहायक होता है। परन्तु उपरोक्त भाव का स्वामी ग्रहों का शत्रु है। तो विवाह में बाधा आती है।

सूर्य ग्रह से विचार : - सूर्य यदि पंचम, सप्तम या द्वादश भाव में स्व राशि को छोड़कर अन्य राशियों में सूर्य स्थित हो तो विवाह में बाधा आती है।

1.3.1 मंगल ग्रह से विचार –

विवाह से सम्बन्धित भाव विचार आइए अभी तक तो आप लोग विवाह के प्रयोजन के बारे में जानकारी प्राप्त किये आइए अब विवाह के सम्बन्धित भाव तथा भावेश के बारे में जानकारी प्राप्त करते है। सप्तम भाव से या स्थान से विवाह का विचार किया जाता है। विवाह के प्रतिबन्धक योग निम्नलिखित है –

1. सप्तमेश शुभ युक्त न होकर 6।8।12 भाव में हो अथवा नीच का या अस्तगत हो तो विवाह नहीं होता है। अथवा विधुर होता है।
2. सप्तमेश द्वादश भाव में हो तो तथा लग्नेश और जन्मराशि का स्वामी सप्तम में हो तो विवाह नहीं होता है।

3. षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश सप्तम में हो तथा ये ग्रह शुभ ग्रह से दृष्ट अथवा युत न हो तो अथवा सप्तमेश 6।8।12 वें भाव के स्वामी हो तो जातक को स्त्री सुख नहीं मिलता है।
4. यदि शुक्र अथवा चन्द्रमा साथ होकर किसी भाव में बैठें हो और शनि एवं भौम उनसे सप्तम भाव में हो तो विवाह नहीं होता है।
5. लग्न, सप्तम और द्वादश भाव में पापग्रह बैठें हो और पंचमस्थ चन्द्रमा निर्बल हो तो विवाह नहीं होता है।
6. 7 वें 12 वें स्थान में दो – दो पापग्रह हों तथा पंचम में चन्द्रमा हो तो जातक विवाह नहीं होता है।
7. सप्तम में शनि और चन्द्रमा के सप्तम भाव में रहने से जातक का विवाह नहीं होता है। अगर यदि विवाह होता भी है तो स्त्री वन्ध्या होती है।
8. सपतम भाव में पापग्रह के रहने से मनुष्य को स्त्री सुख में बाधा होता है।
9. शुक्र और बुध सप्तम भाव में एक साथ हों तथा सप्तम भाव पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह नही होता किन्तु शुभग्रहों की दृष्टि रहने से बड़ी आयु में विवाह होता है।
10. यदि जन्म लग्न से सप्तम भाव में केतु हो और शुक्र की दृष्टि उन पर हो तो स्त्री सुख कम होता है।
11. शुक्र – मंगल 5।7।9 वें भाव में हो तो विवाह नहीं होता है।
12. लग्न में केतु हो तो भार्यामरण तथा सप्तम में पापग्रह हो और सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि भी हो तो जातक को स्त्री सुख कम होता है।

1.3.2 विवाह योग : -

1. सप्तम भाव शुभ युत या दृष्ट होने पर तथा सप्तमेश के बलवान होने पर विवाह होता है।
2. शुक्र स्वगृही या कन्या राशि में हो तो विवाह होता है।
3. सप्तमेश लग्न में हो या सप्तमेश शुभ ग्रह से युत होकर एकादश भाव में हो तो विवाह होता है।

अभी तक तो आपलोग ज्योतिष के अनुसार एवं कुण्डली के भावों के अनुसार विवाह न होने वाले एवं विवाह होने वाले नियमों की जानकारी प्राप्त की तथा साथ ही विवाह की उपयोगिता के बारे में जानकारी प्राप्त किये आइए अब विवाह पूर्ण रूप से होने वाले नियमों तथा योगों की जानकारी प्राप्त करते है –

1. जितने अधिक बलवान ग्रह सप्तमेश से दृष्ट होकर सप्तम भाव मं गये हो उतनी ही जल्दी विवाह होता है।

2. द्वितीयेश और सप्तमेश 1 । 4 । 5 । 7 । 9 । 10 वें स्थान में हो तो विवाह होता है।
3. मंगल तथा सूर्य के नवमांश में बुध - गुरू गये हों या सप्तम भाव में गुरू का नवमांश हो तो विवाह होता है।
4. लग्नेश लग्न में हो, लग्नेश सप्तम भाव में हो, सप्तमेश या लग्नेश द्वितीय भाव में हो तो विवाह योग होता है।
5. सप्तम और द्वितीय स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तथा द्वितीयेश और सप्तमेश शुभ राशि में हो तो विवाह होता है।
6. लग्नेश दशम में हो और उसके साथ बलवान बुध हो एवं सप्तमेश और चन्द्रमा तृतीय भाव में हो तो जातक का विवाह होता है।
7. वृहस्पति अपने मित्र के नवमांश में हो तो विवाह होता है।
8. सप्तम में चन्द्रमा या शुक्र अथवा दोनों के रहने से विवाह होता है।
9. यदि लग्न से सप्तम भाव में शुभ ग्रह हो या सप्तमेश शुभ ग्रह से युत होकर द्वितीय, सप्तम या अष्टम में हो तो जातक का विवाह होता है।
10. विवाह प्रतिबन्धक योगों के न रहने पर विवाह होता है।

आइए अब विवाह तथा स्त्री संख्या विचार करते है। अभी तो आप लोग विवाह होने वाले एवं न होने वाले योगों की जानकारी प्राप्त किये है।

1. सप्तम में वृहस्पति और बुध के रहने से एक स्त्री होती है। सप्तम में मंगल या रवि हो तो एक स्त्री होती है।
2. लग्नेश और सप्तमेश इन दोनों ही के लग्न या सप्तम में रहने से दो स्त्रीयॉं होती है। यदि लग्नेश व सप्तमेश दोनों स्वगृही हों तो जातक का एक विवाह होता है।
3. सप्तमेश और द्वितीयेश शुक्र के साथ अथवा पापग्रह के साथ होकर 6।8।।2 वें भाव में हो तो एक स्त्री की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह होता है।
4. यदि सप्तम या अष्टम स्थान में पापग्रह और मंगल द्वादश भाव में हो तथा द्वादशेश अदृश्य चक्रार्ध में हो तो जातक का द्वितीय विवाह अवश्य होता है।
5. लग्न सप्तम स्थान और चन्द्रलग्न - ये तीनों द्विस्वभाव राशि में हो तो जातक के दो विवाह होते है।
6. लग्नेश , सप्तमेश और राशिश द्विस्वभाव राशि में हो तो दो विवाह होता है।
7. लग्नेश द्वादश भाव में ओर द्वितीयेश पापग्रह के साथ कहीं भी हो तथा सप्तम स्थान में पापग्रह बैठा हो तो जातक की दो स्त्रीयॉं होती है।

8. शुक्र पापग्रह के साथ हो अथवा नीच राशि का हो तो जातक का दो विवाह होता है।
9. अष्टमेश 1।7 वें भाव में हो, लग्नेश छठें भाव में, अथवा लग्नेश लग्न में हो, सप्तमेश शुभग्रह से युत शत्रु या नीच राशि में गया हो एवं शुक्र नीच शत्रु और अस्तगत राशि का हो तो दो विवाह होता है।
10. धन स्थान में अनेक पापग्रह हों और धनेश भी पापग्रहों से दृष्ट हो तो तीन विवाह होते है।
11. सप्तम भाव में बहुत पापग्रह हो तथा सप्तमेश पापग्रहों से युत हो तो तीन विवाह होते है।
12. बली चन्द्र और शुक्र एक साथ हो, बली शुक्र सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो, लग्नेश उच्च का हो या लग्न भाव में उच्च का ग्रह एवं लग्नेश द्वितीयेश ओर षष्ठेश ये तीनों ग्रह पापग्रहों से युक्त होकर सप्तम भाव में स्थित हों तो जातक अनेक स्त्रियों के साथ विहार करने वाला होता है।
13. सप्तमेश से तीसरे स्थान में चन्द्रमा, गुरू से दृष्ट हो या सप्तमेश से तीसरे, सातवें भाव में चन्द्रमा हो, सप्तमेश शनि हो, सप्तमेश नवमेश बली होकर 5।9 वें भाव में स्थित हो एवं दशमेश से दृष्ट सप्तमेश 1।4।5।7।9।10 वें भाव में स्थित हो तो जातक अनेक स्त्री भोगी होता है।
14. सातवें या 12 वें भाव में बुध हो वेश्यागामी होता है।

स्त्री में रोग विचार –

1. लग्न स्थान में शनि, मंगल, बुध, केतु इन चारों में से किसी भी ग्रह के रहने से स्त्री रोगिणी रहती है।
2. सप्तमेश 8 । 12 वें भाव में हो तो भार्या रोगिणी होती है।
3. सप्तमेश और द्वितीयेश दोनों पापग्रहों से युत होकर 2 । 12 वें भाव में हो तो स्त्री रोगी होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पुरूष को जीवन संगिनी कब मिलती है।
2. विवाह का प्रयोजन लिखिये।
3. स्त्री किस अवस्था में रोगिणी को प्राप्त होती है।
4. विवाह कितने प्रकार के होते है।
5. आसुर विवाह किसे कहते है।

विवाह प्रयोजन -

एक व्यक्ति में बाहरी आकर्षण तो हो सकता है लेकिन भीतर से वह पत्थर हृदय वाला और स्वार्थी हो सकता है। इसीलिए लोग विवाह बन्धन से पहले कुण्डली की व्याख्या मिलान करना उचित समझते है। कुण्डली के द्वादश भावों में सप्तम भाव दाम्पत्य का है। इस भाव के अलावा आयु, भाग्य, संतान, सुख, कर्म स्थान का पूर्णत: ज्ञान करके विवाह करना उत्तम माना गया है।

वैवाहिक बन्धन जीवन का सबसे महत्वपूर्ण बन्धन है। विवाह प्रेम तथा स्नेह पर आधारित एक बंधन है। यह वह पवित्र बन्धन है। जिस पर पूरे परिवार का भविष्य निर्भर करता है। सामान्य कुण्डली में अष्टकूट एवं मांगलिक दोष ही देखा जाता है। लेकिन यह जानलेना अनिवार्य है कि कुण्डली मिलान की अपेक्षा कुण्डली की मूल संरचना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अत: कुण्डली के बारह भावों में सप्तम भाव दाम्पत्य का है। इस भाव के अलावा, आयु, भाग्य, सन्तान, सुख, कर्म, स्थान का पूर्णत: विश्लेषण एक सीमा में अनिवार्य है।

नवमांश कुण्डली, सप्तांश , चतुर्विशांश, सप्तविंशांश के अलावा रोग के लिए त्रिशांश कुण्डली भी देखी जाती है। लड़को के लिए शुक्र एवं लड़कियों के लिए गुरू कारक ग्रह इसकी स्थिति देखना अनिवार्य है। पुन: गुरू से सप्तम, चन्द्र से सप्तम, एवं सप्तम भाव के अधिपति की शुभ स्थिति देखी जाती है। शुभ ग्रह उसे कहते है जो स्वगृही, मित्रगृही या उच्च का हो। आजकल शादी में सीर्फ लड़की का रूप रंग ही देखा जाता है। जबकि सामान्य कद – काठी एवं रूप – रंग के बच्चें भी अत्यन्त भाग्यशाली होते है, और इसके कारण घर की स्थिति उत्तरोत्तर अच्छी होती जाती है और घर में चार चॉद लग जाते है। कई मामलों में मांगलिक दोष भी भंग हो जाता है। लेकिन उसे मांगलिक मान लिया जाता है और शादियॉ कट जाती है।

सप्तम भाव के ग्रह का विभिन्न भाव में शुभ स्थिति में फल –

यदि सप्तम भाव का स्वामी प्रथम भाव में हो तो वह ऐसे व्यक्ति से शादी करेगा जिसे वह बचपन से जानता हो। पति व पत्नी प्रखर बुद्धि के होगें और सभी बातों की जॉच करने की क्षमा होगी। यदि दूसरे भाव में हो तो पत्नी धनी होगी या उसके आने के बाद धन होगा।

यदि तृतीय भाव में हो तो भाई भाग्यशाली होगें। एवं विदेश में निवास करेंगे। यदि सप्तमेश चौथे भाव में हो तो जीवन में पूर्णत: प्रसन्न एवं खुशहाल होता है।

यदि पंचम भाव में हो तो पति या पत्नी सम्पन्न परिवार से होंगे और एक दूसरे के लिए लाभकारी होंगे। छठें भाव में होने से शुभ स्थिति नहीं होती है, लेकिन सप्तम भाव में स्थित होने से पति या पत्नी का व्यक्तित्व आकर्षक होता है। अष्टम भाव में स्थित होने से उसका विवाह किसी पास के सम्बन्ध में

ही हो जाता है और दोनों धनी रहते है। नवम भाव में स्थित होने से जातक के पिता विदेश में रहते है। पत्नी सुसंस्कृत एवं आदर्श होती है।
दशम भाव मे स्थित होने पर जातक विदेश में सफल होता है। यात्रा निरन्तर करनी पड़ती है। पति या पत्नी एक दूसरे के प्रति समर्पित रहते है। वही एकादश भाव में स्थित होने पर पत्नी धनी परिवार से होती है एवं अपने साथ प्रचुर धन लाती है। द्वादश भाव में होने से स्थिति शुभ नहीं रहती हैं।

दाम्पत्य भाव में स्थित ग्रहों का फल -

आपको विदित हो चुका है कि दाम्पत्य भाव सप्तम भाव को कहते है। अगर इस भाव में सूर्य हो तो जातक गोरा होगा, सिर पर बाल कम होंगे, शादी विलंब से होगी और उससे कष्ट होगा। यदि इसी भाव में चन्द्रमा हो तो पति / पत्नी देखने में सुन्दर होंगे। शिक्षा अच्छी होगी शादी से लाभ होगा। इस भाव में शुक्र हो तो जातक का वैवाहिक जीवन सुखी रहेगा, पत्नी इसकी भक्त होगी। लेकिन यह झगड़ालु प्रवृत्ति का होगा।
यहॉ शनि होने से विवाह विलम्ब से होगा। जातक अपनी पत्नी के नियन्त्रण में रहेगा। पत्नी कुरूप होगी, लेकिन अत्यधिक परिश्रमी होगी। यदि यहॉ राहु हो तो जातक के परिवार के लिए दु:ख लेकर आयेगा। पत्नी स्त्रीजन्य रोगों से पीड़ित होगी एवं आराम पंसद होगी, इस भाव में केतु रहने से पत्नी दुष्ट प्रकृति की होगी अथवा पति दुष्ट होगा। साथ जातक के उदर में असाध्य बिमारी होगी।

विवाह से लाभ -

विवाह मानव सभ्यता का सबसे सुन्दर वरदान है, समुचे विश्व में समाज की इकाई के रूप में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। विवाह संस्कार के विभिनन रीति होने के बाद भी इसका उद्देश्य एक ही है। परिवार की स्थापना, जिससे समाज का निर्माण किया जा सके यही विवाह एक ओर समाज को स्थायित्व प्रदान करती है, तो दूसरी तरफ परिवार के प्रत्येक सदस्य अर्थात् बच्चे, बुढ़े महिला एवं युवा को आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक संरक्षण प्रदान करती है।
विवाह घोषण की एक छोटी सी संस्कृत भाषा की शब्दावली है। जिसमें वर – कन्या के गोत्र, पिता – पितामह आदि घोषणा है तथा साथ यह भी वचन है कि यह दोनों अब विवाह सम्बन्ध में आबद्ध होते है। इनका साहचर्य धर्म संगत जनसाधारण की जानकारी में घोषित किया हुआ माना जाये। बिना घोषणा के गुपचुप चलने वाले दाम्पत्य स्तर के प्रेम सम्बन्ध, नैतिक धार्मिक एवं कानूनी दृष्टि से अवांछनीय माने गये है। जिनके बीच दाम्पत्य सम्बन्ध हो, उसकी घोषणा सर्वसाधारण के समक्ष की जानी चाहिए। समाज की जानकारी से जो छिपाया जा रहा हो वह व्यभिचार है। घोषणा पूर्वक विवाह संस्कार में आबद्ध होकर वर कन्या धर्म परम्परा का पालन करते है।

1.3.3 विवाह के प्रकार

मुहूर्त्तचिन्तामणि के विवाह प्रकरण में कुल आठ प्रकार के विवाह का वर्णन किया गया है, जो निम्नलिखित है –

ब्राह्मं दैवस्तथा चाऽऽर्ष: प्राजापत्यस्तथाऽऽसुर: ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम: ।।

1. **ब्राह्म विवाह** – ब्रह्म विधि द्वारा तय की गई विवाह '**ब्रह्म विवाह**' है। या दूसरे शब्दों **में** वर एवं कन्या दोनों पक्षों की सहमति से समान वर्ग के सुयोग्य वर से कन्या का विवाह निश्चित कर देना 'ब्रह्म विवाह' कहलाता है । सामान्यत: इस विवाह के बाद कन्या को आभूषण युक्त करके विदा किया जाता है।
2. **देव विवाह** - किसी सेवा कार्य विशेषत: धार्मिक अनुष्ठानों के मूल्य के रूप में अपनी कन्या को दान में दे देना '**दैव विवाह**' कहलाता है।
3. **आर्ष विवाह -** कन्या पक्ष वालों को कन्या का मूल्य देकर सामान्यत: गोदान करके कन्या से विवाह कर लेना आर्ष विवाह कहलाता है।
4. **प्राजापत्य विवाह** – कन्या की सहमति के बिना उसका विवाह अभिजात्य वर्ग के वर से कर देना '**प्राजापत्य विवाह**' कहलाता है।
5. **गान्धर्व विवाह** – परिवार वालों की सहमति के बिना वर और कन्या का बिना किसी रीति रिवाज के आपस में विवाह कर लेना '**गान्धर्व विवाह**' कहलाता है । जैसे दुष्यंत ने शकुन्तला से '**गान्धर्व विवाह**' किया था , उनके पुत्र भरत के नाम से ही हमारे देश का नाम '**भारतवर्ष**' बना।
6. **असुर विवाह** – कन्या को खरीदकर (आर्थिक रूप से) विवाह कर लेना '**असुर विवाह**' कहलाता है।
7. **राक्षस विवाह** – कन्या की सहमति के बिना, उसका अपहरण करके जबरन विवाह कर लेना **राक्षस विवाह** कहलाता है।
8. **पैशाच विवाह** – कन्या की मदहोशी (गहन निद्रा, मानसिक दुर्बलता आदि) का लाभ उठाकर उससे शारीरिक सम्बन्ध बना लेना और उससे विवाह करना **पैशाच विवाह** कहलाता है।

विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है । दो प्राणी अपने अलग – अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते है। स्त्री और पुरूष दोनों में परमात्मा ने कुछ

विशेषताएँ और कुछ अपूर्णताएँ दे रखी है। विवाह सम्मिलन से एक दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते है। इससे समय तथा व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए विवाह को सामान्यतया मानव जीवन की एक – एक आवश्यकता माना गया है। एक – दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुँचाने हेतु गाड़ी में लगे हुए दो पहियों की तरह प्रगति पथ पर अग्रसर होते जाना विवाह का उद्देश्य है। वासना का दाम्पत्य जीवन में अत्यन्त तुच्छ और गौड़ स्थान है, प्रधानत: दो आत्माओं के मिलन से उत्पन्न होने वाली उस महति शक्ति का निर्माण करना है। जो दोनों के लौकिक एवं आध्यात्मिक जीवन के विकास में सहायक सिद्ध हो सके।

विवाह के स्वरूप –

विवाह का स्वरूप आज विवाह वासना प्रधान बनते चल जा रहे है। रंग रूप एवं वेश – विन्यास के आकर्षण को पति – पत्नी के चुनाव में प्रधानता दी जाने लगी है, यह प्रवृत्ति बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। यदि लोग इसी तरह सोचते रहे, तो दाम्पत्य जीवन शरीर प्रधान रहने से एक प्रकार के वैध – व्यभिचार का ही रूप धारण कर लेगा। पाश्चात्य जैसी स्थिति भारत में भी आ जायेगा। शारीरिक आकर्षण की न्यूनाधिकता का अवसर सामने आने पर विवाह शीघ्रता से विच्छेद और सन्धि होते रहेंगे। अभी पत्नी का चुनाव शारीरिक आकर्षण का ध्यान में रखकर किये जाने वाला प्रथा चली है। थोड़े ही दिनों में इसकी प्रतिक्रिया पति के चुनाव में भी सामने आयेगी। तब कुरूप पतियों को कोई पत्नी पसन्द नहीं करेगी और उन्हें दाम्पत्य सुख से वंचित ही रहना पड़ेगा। समय रहते ही इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए और शारीरिक आकर्षण की उपेक्षा कर सद्गुणों तथा सद्भावनाओं को ही विवाह का आधार पूर्वकाल तरह बने रहने देना चाहिए शरीर का नहीं। आत्मा का सौन्दर्य देखा जाना चाहिए और जीवन साथी में जो कमी है, उसे प्रेम सहिष्णुता, आत्मीयता एवं विश्वास की छाया में जितना सम्भव हो सके, सुधारना चाहिए जो सुधार न हो सके, उसे बिना असन्तोष लाये सहन करना चाहिए। इस रीति – नीति पर दाम्पत्य जीवन की सफलता निर्भर है। अतएव पति – पत्नी को एक दूसरे से आकर्षण लाभ मिलने की बात न सोचकर एक दूसरे के प्रति आत्म समर्पण करने और सम्मिलित शक्ति उत्पन्न करने, उसके जीवन विकास की सम्भावनायें उत्पन्न करने की बात सोचनी चाहिए। चुनाव करते समय तक साथी को पसन्द करने न करने की छूट है। जो कुछ देखना – ढूँढना परखना हो वह कार्य विवाह से पूर्व ही समाप्त कर लेना चाहिए। जब विवाह हो गया तो फिर यह कहने की गुंजाइश नहीं रहती कि भूल हो गई, इसलिए साथी की उपेक्षा की जाए। जिस

प्रकार के भी गुण – दोष युक्त साथी के साथ विवाह बन्धन में बंधे उसे अपनी और से कर्तव्य पालन समझकर पूरा करना ही एक मात्र मार्ग रह जाता है। इसी के लिए विवाह संस्कार का आयोजन किया जाता है। समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की गुरूजनों की, कुटुम्बी सम्बन्धियों की, देवताओं की उपस्थित इसलिए इस धर्मानुष्ठान के अवसर पर आवश्यक मानी जाती है कि दोनों में से कोई इस कर्तव्य बन्धन की उपेक्षा करे तो उसे रोके और प्रताडित करे। पति – पत्नी इन सम्भ्रान्त व्यक्तियों के सम्मुख अपनी निश्चय की प्रतिज्ञा, बन्धन की घोषणा करते है। यह प्रतिज्ञा समारोह की विवाह संस्कार है। इस अवसर पर दोनों की ही यह भावनायें गहराई तक अपने मन में स्थिर करनी चाहिए कि वे पृथक व्यक्तियों की सत्ता समाप्त कर एकीकरण की आत्मीयता में विकसीत होते है। कोई किसी पर न तो हुकूमत जमायेगा, न अपने अधीन वशवर्ति रखकर अपने लाभ या अहंकार की पूर्ति करनी चाहेंगे। वरन् वह करेगा जिससे साथी को सुविधा मिलती हो। दोनों अपनी इच्छा आवश्यक को गौण और साथी की आवश्यकता को मुख्या मानकर सेवा और सहायता का भाव रखेंगे, उदारता एवं सहिष्णुता बर्तेंगे, तभी गृहस्थी का रथ ठीक तरह आगे बढ़ेगा। इस तथ्य को दोनो भली प्रकार हृदयंगम कर ले और इसी रीति – नीति को आजीवन अपनाये रखने का व्रत धारण करे, इसी प्रयोजन के लिये यह पुण्य संस्कार आयोजित किया जाता है। इस बात को दोनो भली प्रकार समझ ले और सच्चे मन से स्वीकार कर ले, तो ही विवाह बन्धन में बचे। विवाह संस्कार आरम्भ करने से पूर्व या वेदी पर बैठाकर दोनों को यह तथ्य भली प्रकार समझा दिया जाये और उनकी सहमती मॉंगी जाये। यदि दोनों इन आदर्शों को अपनाये रहने की हार्दिक सहमती, स्वीकृति दें, तो ही विवाह संस्कार आगे बढ़ाया जाये।

विवाह में विशेष व्यवस्था : -

विवाह संस्कार में देव पूजन, यज्ञ आदि से सम्बन्धित सभी व्यवस्थाये पहले ही बनाकर रखनी चाहिये। सामुहिक विवाह हो तो प्रत्येक जोडे के हिसाब से प्रत्येक वेदी पर आवश्यक सामग्री रखनी चाहिए, कर्मकाण्ड ठीक से होते चले, इसके लिए प्रत्येक वेदी पर एक – एक जानकार व्यक्ति की नियुक्ति करनी चाहिए। एक ही विवाह है तो आचार्य स्वयं ही देख – रेख कर सकते है। सामान्य व्यवस्था के साथ जिन वस्तुओं की जरूरत विशेष कर्मकाण्ड में पड़ती है, उन पर प्रारम्भ में ही दृष्टि डाल लेनी चाहिए। विवाह संस्कार के निम्नलिखित चरणों का उल्लेख गृह्यसूत्रों में मिलता है –

1. पहले वर पक्ष के लोग कन्या के घर जाते थे।
2. जब कन्या का पिता अपनी स्वीकृति दे देता था, तो वर यज्ञ करता था।

3. विवाह के दिन प्रात: वधु को स्नान कराया जाता था।
4. वधु के परिवार का पुरोहित यज्ञ कराता था और चार या आठ विवाहित स्त्रियॉं नृत्य करती थी।
5. वर – कन्या के घर जाकर उसे वस्त्र, दर्पण और उबटन देता था।
6. कन्या औपचारिक रूप से वर को दी जाती थी (कन्यादान)।
7. वर अपने दाहिने हाथ से वधु का दाहिना पकड़ता था (पाणिग्रहण)।
8. पाषाण शिला पर पैर रखना।
9. वर का वधू को अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा कराना। (अग्निपरिणयन)।
10. खीलों का होम (लाजा होम)
11. वर – वधू का साथ – साथ सात कदम चलना (सप्तपदी), जिसका अभिप्राय था कि वे जीवन भर मिलकर कार्य करेगें। अंत में वर वधू को अपने घर से ले जाता था। प्रत्येक धार्मिक कृत्यों में अग्नि में आहुति दी जाती थी और ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। उपर्युक्त धार्मिक कृत्यों में कन्यादान, विवाह होम, पाणिग्रहण, अग्निपरिणयन, अश्मारोहण, लाजाहोम और सप्त पदी बहुत महत्वपूर्ण है।

कन्यादान -

कन्यादान का अर्थ है कि कन्या का पिता या अभिभावक उसे वर को देता है और वर उसे स्वीकार करता है। तब पिता वर से कहता है कि तुम धर्म अर्थ और काम तीनों पुरूषार्थों में अपनी पत्नी का सहयोग लेना और वर तीन बार प्रतिज्ञा करता था कि वह ऐसा ही करेगा।

पाणिग्रहण –

विवाह के होम के बाद पाणिग्रहण होता है, जिसमें पति प्रतिज्ञा करता है कि तुम्हारे पति के रूप में रहने की इच्छा से मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ा है। तुम यह भली – भॉंति समझ लो कि देवताओं ने तुम्हारा शरीर मुझे इस लिए दिया है कि तुम्हारे साथ गृहस्थ के कर्तव्यों को पुरा कर सकूँ।

लाजा होम में वधु अर्यमा, वरूण, पूषा और अग्नि देवताओं के लिए अग्नि में धान के लावा का आहुति देती है, जिससे कि उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय रहे एवं जीवन उत्तरोत्तर विकास करें। साथ ही इस विवाह संस्कार में वर – वधु प्रतिज्ञा करते है कि हमारा चित एक सा हो। हममे किसी प्रकार का भेदभाव न हो। इस प्रकार उनका गृहस्थ जीवन सुख, शान्ति और समृद्ध पूर्ण होगा और कोई कलह न होगा और उनकी संतान भी उत्तम होगी। विवाह का शाब्दिक अर्थ है वर का वधु को, उसके पिता के घर से अपने घर ले जाना, किन्तु यह शब्द उस पुरे संस्कार का हो वत्तक है, जिससे

यह कार्य सम्पन्न किया जाता था। इस संस्कार के बाद ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। प्राचीन भारतीय विद्वानों के अनुसार इस संस्कारों के दो प्रमुख उद्देश्य थे। मनुष्य विवाह करके देवताओं के लिए यज्ञ करने का अधिकारी हो जाता था और पुत्र उत्पन्न कर सकता था। दुसरे शब्दों में इस संस्कार के द्वारा व्यक्ति का पूर्ण रूप से समाजिकरण हो जाता था, सन्तानोत्पत्ति द्वारा वह अपने वंश को जीवित रखने और उसको शक्तिमान बनाने और यज्ञों द्वारा समाज के प्रति अपने कर्तव्य पुरा करने की प्रतिज्ञा करता था। साथ ही वह व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पूरा करके धर्म संचय करके, अपने जीवन के लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता था। भारतीयों की धारणा थी कि बिना पत्नी क कोई व्यक्ति धर्माचरण नहीं कर सकता। मनु के अनुसार इस संस्कार में बिना विवाह के स्त्री – पुरूषों के उचित सम्बन्ध सम्भव नही है और सन्तानोत्पत्ति द्वारा ही मनुष्य इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त कर सकता है। प्राचीन भारत में यह समझा जाता था कि पत्नी ही धर्म, अर्थ, मोक्ष का स्रोत है। पुत्री का विवाह करना पिता का परम कर्तव्य समझा जाता था। यदि यौवन प्राप्त करने पर भी कन्या के अभिभावक उसका विवाह न करे, तो वे बड़े पाप के भागी होते थे। धर्म शास्त्रकारों ने लिखा है कि ऐसी दशा में कन्या स्वयं ही अपने लिए योग्य वर ढुंढ कर विवाह कर सकती थी। गृह्यसूत्रों में विवाह संस्कार के लिए उपर्युक्त समय, वर और वधु की योग्यताए और विवाह संस्कार के विभीन्न चरणों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अनुसार वधु कुमारी होनी चाहिए और वर की माता की सपिण्ड – सम्बन्धिनी और वर के गोत्र की नही होनी चाहिए। सपिण्ड का अर्थ है माता के पूर्वजों ने छ: पीढी और उसके निकट सम्बन्धियों में छ: पीढी। विद्वानों का मत है कि गोत्र उस पूर्वज ऋषी के नाम पर, जिसके उस गोत्र के सभी व्यक्ति सन्तान हैं। इन प्रतिबन्धो का यह उद्देश्य था कि अतिनिकट सम्बन्धियों में वैवाहिक सम्बन्ध न हो।

माता पिता के सन्तान के साथ या भाई – बहन के अवांछनीय वैवाहीक सम्बन्ध का भय ही सम्भवत: इन प्रतिबन्धों का मूल कारण था।

मनु के अनुसार उन परिवारो की कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए, जो धर्मपालन नहीं करते हो, जिन्हें पुत्र जन्म न होता हो या जिनमें कुछ पुराने रोग हो, क्योंकि पुत्र न होना और रोगो का पैतृक प्रभाव भावी संतान पर हो सकता है। वात्सयायन ने भी वधु मे उक्त अभिष्ट गुणों का होना अनिवार्य माना है। मनु ने वर की योग्यता पर विशेष विवरण नही दिया, किन्तु याज्ञवल्क्य और नारद ने दिया है। उनके अनुसार वर वेदों को जानने वाला, चरित्रवान, स्वस्थ, बुद्धिमान और कुलिन होना चाहिए। अभी तक तो आपलोग विवाह प्रयोजन विषय से सम्बन्धित अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किये परन्तु अब आइए विवाह प्रयोजन विषय से सम्बन्धित वृहस्पति एवं शुक्र का क्या प्रभाव होता है, इस पर विचार करते है –

वृहस्पति एवं शुक्र दो ग्रह है, जो पुरूष एवं स्त्री सुख का प्रतिनिधित्व करते है, मुख्य रूप से दो ग्रह वैवाहिक जीवन के सुख – दुख संयोग और वियोग का फल देते है।

वृहस्पति एवं शुक्र दोनों ही शुभ ग्रह है। सप्तम भाव जीवनसाथी का घर होता है, इस घर में इन दोनों ग्रहों के स्थिति एवं प्रभाव के अनुसार विवाह एवं दाम्पत्य सुख का सुखद अथवा दु:खद फल मिलता है। पुरूष की कुण्डली में शुक्र ग्रह पत्नी एवं वैवाहिक सुख का कारक होता है और स्त्री के कुण्डली में वृहस्पति। ये दोनों ग्रह स्त्री एवं पुरूष की कुण्डली में जहॉं स्थित होते है और जितने स्थानों को देखते है, उनके अनुसार जीवनसाथी मिलता है, वैवाहिक सुख प्राप्त होता है।

ज्योतिष शास्त्र का निर्णय यह है कि वृहस्पति जिस भाव में होता है, उस भाव के फल को दुषित करता है और जिस भाव पर इनकी दृष्टि होती है उस भाव से सम्बन्धित सुफल प्राप्त करते है। जिस स्त्री अथवा पुरूष की कुण्डली में गुरू सप्तम भाव में विराजमान होता है, उनका विवाह विलम्ब से होता है अथवा दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने में वृहस्पति और शुक्र का सप्तम भाव सप्तमेश से सम्बन्ध महत्वपूर्ण होता है। जिस पुरूष की कुण्डली में सप्तम भाव सप्तमेश और विवाह कारक ग्रह शुक्र और वृहस्पति से युत् अथवा दृष्ट हो, तो उसे सुन्दर गुणों वाली अच्छी जीवन संगिनी मिलती है, इसी प्रकार जिस स्त्री की कुण्डली में सप्तम भाव सप्तमेश और विवाह कारक ग्रह वृहस्पति शुक्र से युत् या दृष्ट होता है उसे सुन्दर अच्छे संस्कारों वाला पति मिलता है। शुक्र भी वृहस्पति के समान दाम्पत्य भाव में सफल वैवाहिक जीवन के लिये शुभ नही माना जाता है। सप्तम भाव का शुक्र व्यक्ति को अधिक कामुक बनाता है, जिससे विवाहेत्तर सम्बन्ध के कारण वैवाहिक जीवन में क्लेश के कारण गृहस्थ जीवन का सुख नष्ट हो जाता है। वृहस्पति और शुक्र जब सप्तम भाव को देखते है, तो इस स्थिति में वैवाहिक जीवन सफल एवं सुखद होता है। लग्न में वृहस्पति अगर पापकर्तरीयोग से पीडित होता है, तो सप्तम भाव पर इसकी दृष्टि का शुभ प्रभाव नही होता है ऐसे में सप्तमेश कमजोर हो या शुक्र के साथ हो, तो दाम्पत्य जीवन सुखद और सफल रहने की सम्भावना कम रहती है।

प्रश्न कुण्डली में लाभप्रद वैवाहिक सम्बन्ध के लिए ग्रह स्थिति –

विवाह के लिए प्रश्न कुण्डली में सप्तम, द्वितीय और एकादश भाव को देखा जाता है। विवाह के कारक ग्रह के रूप में पुरूष की कुण्डली में शुक्र और चन्द्रमा को देखा जाता है जबकि स्त्री के कुण्डली में मंगल और सूर्य को देखा जाता है।

गुरू भी स्त्री के कुण्डली में विवाह के विषय में महत्वपूर्ण होता है। सप्तम भाव में शुभ ग्रह स्थितियों और एकादश एवं द्वितीय भाव भी शुभ प्रभाव में हो तो विवाह लाभप्रद और सुखमय होने का संकेत

माना जाता है। अगर नवम भाव का स्वामी सप्तम भाव में शुभ प्रभाव होता है, तो विवाह के पश्चात् व्यक्ति को अधिक कामयाबी मिलती है। नवम भाव का स्वामी चन्द्रमा अगर सप्तम में गुरू से युति सम्बन्ध बनाता है चन्द्रमा को देखता है तो विवाह के पश्चात् जीवन अधिक सुखमय हो सकता है, ऐसी सम्भावना हो सकता है।

जब प्रश्नकर्ता प्रश्न कुण्डली से यह पूछता है कि वैवाहिक सम्बन्ध लाभप्रद होगा अथवा नही, इस प्रश्न के उत्तर में प्रश्न कुण्डली में अगर चन्द्रमा, तृतीय, पंचम , दशम अथवा एकादश भाव में हो और गुरू चन्द्रमा को देखता है तो वैवाहिक सम्बन्ध लाभप्रद होने की पूरी सम्भावना व्यक्त की जाती है।

लग्न स्थान में चन्द्रमा अथवा शुक्र , तुला, वृष या कर्क राशी हो, और गुरू अपनी शुभ दृष्टि से लग्न को देखता हो तो वैवाहिक सम्बन्ध लाभकारी हो सकता है। अष्टम भाव का स्वामी प्रश्न कुण्डली में अगर पीडित नही हो तो आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवार में विवाह होता है और सम्बन्ध से लाभ मिलता है। अष्टम भाव में अगर गुरू, शुक्र या राहु भी हो तो इसे और भी शुभ संकेत माना जाता है।

प्रश्न कुण्डली में लाभप्रद वैवाहिक सम्बन्ध –

उदाहरणार्थ –

कन्या के माता – पिता को अपने पुत्री के शादी के सम्बन्ध में सबसे अधिक चिन्ता रहती है। कन्या भी अपनी भावी जीवन, पति, ससुराल एवं उससे सम्बन्धित अन्य विषयों को लेकर फिक्रमन्द रहती है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कन्या की कुण्डली का विश्लेषण सही प्रकार से किया जाये, सभी विषयों की पुरी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

कन्या के विवाह में सबसे अधिक चिन्ता उसके होने वाले पति के विषय में होती है, कि वह कैसा होगा। सप्तम भाव और सप्तमेश विवाह में महत्वपूर्ण होता है। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सप्तम भाव में शुभ ग्रह अर्थात् चन्द्र, गुरू, शुक्र या बुध हो अथवा ये ग्रह सप्तमेश हो अथवा इनकी शुभ दृष्टि इस भाव पर होने पर कन्या का होने वाला पति कन्या की आयु से सम अर्थात् आस – पास का ही होता है। यह देखने में सुन्दर होता है। सूर्य, मंगल, शनि अथवा राहु, केतु सप्तम भाव में हो अथवा इनका प्रभाव इस भाव पर हो तब वह गोरा और सुन्दर होता है और कन्या से लगभग 5 वर्ष बड़ा होता है। कन्या की कुण्डली में सूर्य अगर सप्तमेश हो तो यह संकेत है किपति सरकारी क्षेत्र से सम्बन्धित होगा। चन्द्रमा सप्तमेश होने पर पति मध्यम कदकाठी का और शान्ति चित्त होता है। सप्तमेश मंगल होने पर पति बलवान परन्तु स्वभाव से क्रोधी होता है। मध्यम कदकाठी का ज्ञानवान

और पुलिस या अन्य क्षेत्र में कार्यरत् होता है। सप्तम भाव में शनि अगर उच्च राशि का होता है, तो पति कन्या से अत्यधिक बड़ा होता है और लम्बा - पतला होता है। नीच का शनि होने पर पति सॉवला होता है।

जीवन साथी की आयु –

लड़की की जन्मपत्री में द्वितीय भाव को पति की आयु का घर कहते है। इस भाव का स्वामी शुभ स्थिति में होता है अथवा अपने स्थान से दूसरे स्थान को देखता है तो पति दीर्घायु होता है।

जिस कन्या के द्वितीय भाव में शनि स्थित हो या गुरू सप्तम भाव में स्थित हो एवं द्वितीय भाव को देख रहे हो वह स्त्री भी सौभाग्यशाली होती है अर्थात् पति की आयु लम्बी होती है।

विवाह की आयु

कन्या जब बड़ी होने लगती है तब माता – पिता इस बात को लेकर चिंतित होने लगते है कि कन्या का विवाह कब होगा। ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से कन्या की लग्न कुण्डली में सप्तम भाव का स्वामी बुध हो और वह पापग्रहों से पीडित न हो तो कन्या का विवाह किशोरावस्था पार करते – करते हो जाती है। सप्तम भाव में सप्तमेश मंगल हो और वह पापग्रहों से प्रभावित हो तब भी विवाह किशोरावस्था पार करते करते हो जाती है। शुक्र ग्रह युवा का प्रतीक है। सप्तमेश अगर शुक्र हो और वह पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो युवावस्था में प्रवेश करने के बाद कन्या का विवाह हो जाता है। चन्द्रमा के सप्तमेश होने से किशोरावस्था पार कर कन्या जब यौवन के स्थिति को प्राप्त करती है, तब 1 से 2 वर्ष के अन्दर विवाह होने की सम्भावना प्रबल होती है। सप्तम भाव में वृहस्पति अगर सप्तमेश होकर स्थित हो और उस पर पापी ग्रहों का प्रभाव नही हो तब विवाह सामान्य उम्र से कुछ अधिक आयु सम्भव है।

विवाह में कुण्डली मिलान -

कुण्डली मिलान वैदिक ज्योतिषशास्त्र की एक बहुत ही पुरानी कार्यप्रणाली है जो एक खुशहाल और सफल वैवाहिक जीवन हो, ऐसी स्थिति के लिये कार्य करती है। दम्पति में अच्छे सम्बन्ध हो इसके लिये ज्योतिषोक्त मेलापक आवश्यक है। अपने और अपने साथी की कुण्डली मिलाकर अपने बीच की अनुकूलता की जानकारी जाना जा सकता है। इसमें आपाको शनि तथा मंगल का भी जो दोष होता है, उसकी जानकारी और उपाय भी प्राप्त होगा। यह अक्सर कहा जाता है कि विपरीत चीजें आकर्षित होती है, लेकिन क्या यह मनुष्यों पर भी लागू होता है। यदि स्वर्ग में हलचल हो तो क्या होगा ? जीवन हमेशा सुखों से भरा हुआ नही होता है। ज्योतिषीय फलकथन केवल भविष्य का फलकथन नही है। कुण्डली मनुष्य के स्वभाव उसकी पंसाद और नापसंद, सामाजिक

व्यवहार की कुशलताए और उसके व्यवहार करने के तरीके को भी व्यक्त करती है। भारतीय समाज में विवाह को जन्मों का सम्बन्ध माना जाता है। सम्भावित वर और वधू के मध्य संवादिता सुनिश्चित करने के लिए उनकी कुण्डली का मिलान करना ही एक विकल्प है। विवाह के बाद युगल एक दूसरे को प्रभावित करते है और उनके कुण्डली का सम्मिलित असर उनके भविष्य पर होता है। एक बार विवाह हो जाये उसके पश्चात् उनकी कुण्डली जीवन भर के लिए उनके भविष्य और जीवन प्रणाली को सामुहिक रूप से प्रभावित करती है। सामान्यत: उत्तर और दक्षिण भारत में कुण्डली मिलाने का तरीका एक जैसा है। फिर भी कुछ बातें दक्षिण भारत से अलग अलग है। कुण्डली मिलाते समय 8 मुख्य तत्वों का मिलान दोनों स्थलों पर एकसमान ही परिलक्षित है –

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रीकम्। गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिका॥

1. वर्ण 2. वश्य 3. तारा 4. योनि 5. ग्रहमैत्री 6. गण 7. भकुट 8. नाडी

प्रत्येक घटक को एक निश्चित अंक दिया गया है, जो इस प्रकार है –

वर्ण को 1 अंक, वश्य को 2 अंक, तारा को 3 अंक, योनि को 4 अंक, ग्रहमैत्री को 5 अंक, गण को 6 अंक, भकुट को 7 अंक तथा नाडी को 8 अंक। इन सभी का **कुल योग 36** होता है। यही मेलापक में सर्वाधिक अंक माना जाता है। इस मानदण्ड के आधार पर दो सम्भावित लोगों की कुण्डली मिलाना और उसके फल की गणना करना ही गुण मिलान कहलाता है।

36 में 18 अंक 50 प्रतिशत हुआ जिसे औसत माना जाता है और 28 अंक मिले तो सन्तोषजनक माना जाता है। कुण्डली मिलान के समय कम से कम 18 अंक मिलने चाहिए। यदि होने वाले वर – वधु एक ही नाडी के हो तो यह नाडी दोष कहलाता है। उदाहरण के लिय यदि दोनों ही मध्य नाड़ी हो तो इस नाड़ी दोष से बच्ची के जन्म से समस्या आती है। इस तरह के मामले में सन्तान सुख की सम्भावना नहीं के बराबर रहती है।

इससे शामिल युगल का रक्त समुह से सीधा सम्बन्ध रहता है। यह एक गहन अध्ययन का विषय है और सम्वादिता की गणना के दौरान केवल इन्हीं कारकों को क्यों देखा गया। फिर भी इसकी वैद्यता पर सवाल नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिये यदि लड़की श्वान अर्थात् कुत्ता योनि एवं लड़का मार्जार अर्थात् बिल्ली योनि की हो तो ऐसी स्थिति में लड़की हमेशा लड़के पर हावी रहेगी। यह भविष्यवाणी कुत्ता के बिल्ली के स्वभाव के आधार पर की जा सकती है। पुरे भारत में कुण्डली मिलाते समय मंगल दोष को गम्भीरता से लिया जाता है जबकि ज्योतिषी शनि दोष को उतना गंभीर नही मानते है। कुण्डली मिलाते समय राशि यानि चन्द्र राशि का सही तरीके से मिलान और उसके फल पर विचार करना चाहिए। कुण्डली मिलाते समय इन 10 कारकों पर विचार किया जाता है

कुण्डली मिलाते समय लग्न का भी उतना ही महत्व है।

1. ग्रहों के आधार पर होने वाले वर – वधू के दाम्पत्य जीवन की आयु के आधार पर गणना की जाती है।
2. गण – सुखी जीवन एवं सामान्य लाभ का प्रतिनिधित्व करता है।
3. महेन्द्र - बच्चे के जन्म की सम्भावना से सम्बन्धित है।
4. स्त्री दीर्घा - यह भी सुखी और सामान्य जीवन के लिये होता है।
5. योनि – आनन्ददायक एवं संतुलित वैवाहिक जीवन के लिये देखा जाता है।
6. राशि – यह सन्तान तथा उनकी खुशी के लिए होता है।
7. रहस्याधिपति – यह भी वंश और धन के बारे में होता है।
8. वैश्य - यह विवाह से मिलने वाले प्रेम और खुशी के लिये होता है।
9. रज्जू - यह लम्बे वैवाहिक जीवन के लिये काफी महत्वपूर्ण है और साथ ही वर – वधू के लिये भी महत्वपूर्ण है।
10. वेधई – यह वेधई शून्य हो तो, वैवाहिक जीवन सभी प्रकार से विपदाओं से बचा रहता है।

कुण्डली मिलान और गुण गणना भारत में बहुत प्रचलित प्रथा है। यहॉ सामान्य लोग जानते है कि वैवाहिक बन्धन में बंधने के लिये कितने गुणों की आवश्यकता होती है। कुछ ज्योतिषी कुण्डली मिलाने परम्परागत तरीकों का ही अनुसरण करते है। जैसे वर का लग्न तुला है और वधू का मकर, ऐसे में वैवाहिक गठबन्धन नही होना चाहिए क्योंकि दोनों एक दुसरे के वर्ग में है। इस कारण दोनो में विचारक मतभेद और संघर्ष होता रहेगा। दुसरी ओर अगर वर तुला लग्न में और वधू कुम्भ में हो तो उनका जीवन बहुत ही आनन्दमय होगा क्योंकि दोनो की राशि में एक ही तत्व है वायु। दूसरी स्थित में यदि वर अपना व्यवसाय करता है और वधु का राहु और शनि वर के तीसरे घर को प्रभावित करता है तो विवाह के पश्चात् वर को व्यवसाय में हानि की सामना करना पड़ेगा।

आपसी शारीरिक आकर्षण के लिये वर के साथ ही वधू का शुक्र अनुकूल स्थिति में होना चाहिए। अगर वे त्रिकोण में है तो यह अच्छा हो सकता है। अगर वे केन्द्र में होंगे तो यह प्रेम जीवन में तनाव का संकेत है। इसी तरह युगल के लिये सामान्य खुशीयॉ और दोनों के बीच मजबुत बन्धन के लिये दोनों कुण्डली में सप्तम भाव के मालिक के बीच अच्छे सम्बन्ध होने चाहिए। इस प्रकार कुण्डली मिलान करके विवाह करने से दाम्पत्य जीवन खुशहाल होता है तथा सभी प्रकार के पुरूषार्थो को प्राप्त करता है

1.5 सारांश

विवाह मानव सभ्यता एवं संस्कृति का सबसे सुन्दर वरदान है। इसलिए शास्त्र के नियमों के अनुसार इस संस्कार को करने से मानव समाज को विशेष लाभ प्राप्त होगा। विवाह संस्कार के विभिन्न रीति होने के बाद भी इसका उद्देश्य एक ही है परिवार की स्थापना, जिससे समाज का निर्माण किया जा सके, यही विवाह एक ओर समाज को स्थायित्व प्रदान करती है, तो दूसरी तरफ परिवार के प्रत्येक सदस्य अर्थात् बच्चे, वृद्ध, महिला एवं युवा को आर्थिक शारीरिक एवं मानसिक संरक्षण प्रदान करती है तथा इसका यही मूल रूप से प्रयोजन भी है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

पत्नी भाव = दाम्पत्य भाव = कुण्डली में सप्तम स्थान

विधुर – जिसकी पत्नी मर गई हो

बन्ध्या = जिसका सन्तान न हो

विवाह प्रतिबन्धक योग - विवाह न होने वाला योग

केन्द्र स्थान – कुण्डली में 1,4,7,10 वॉं स्थान

त्रिक - कुण्डली में 6,8,12 वॉं स्थान

कन्यादान - विवाह में कन्या के पिता या अभिभावक द्वारा उसे वर को देना कन्यादान है

गृह – कुण्डली में प्रथम भाव

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कुण्डली में जब लग्नेश सप्तमेश एवं शुक्र बलवान होकर लग्न या सप्तम भाव से सम्बन्ध स्थापित करते हो तो पुरूष को उसकी जीवन संगिनी प्राप्त होती है।
2. सृष्टि चक्र को अनवरत् चलाने के उद्देश्य से विवाह संस्कार का जन्म हुआ तथा विवाह संस्कार का उद्देश्य यह था कि स्त्री और पुरूष के बीच नैतिक सम्बन्ध स्थापित हो ताकि समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो ताकि समाज में स्वस्थ वातावरण का निर्माण हो साथ ही सन्तति उत्पत्ति भी विवाह का मुख्य प्रयोजन है।
3. यदि सप्तमेश 3,12 वें भाव में हो तो भार्या रोगिणी होती है।
4. विवाह आठ प्रकार के होते है।
5. कन्या को क्रय कर (आर्थिक रूप से) विवाह कर लेना 'आसुर विवाह' कहलाता है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय ज्योतिष 2. मुहूर्त्तचिन्तामणि 3. पत्री मार्ग प्रदीपिका 4. वृहज्ज्योतिसार 5. वृहदवकहड़ाचक्रम्

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विवाह प्रयोजन विषय पर टिप्पणी लिखिए।
2. कुण्डली मिलान को समझाइयें।
3. प्रश्न कुण्डली के अनुसार विवाह योग दर्शाइये।

इकाई – 2 विवाह में काल निर्णय

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विवाह में काल निर्णय

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

'विवाह में काल निर्णय' से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझ पायेंगे कि विवाह में काल निर्धाण किस प्रकार किया जाता है तथा शुभ मुहूर्त्त में विवाह करने से संसार के सम्पूर्ण वैभव ऐश्वर्य आदि प्राप्त होते है। तथा अशुभ काल में विवाह करने से दु:ख तथा दरिद्रता की प्राप्ति होती है। जैसे - जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्म तिथि, व्यतिपात योग, भद्रा वैधृति योग, अमावस्या, माता – पिता के क्षय दिन, तिथि क्षय, तिथि वृद्धि , क्षयमास, मलमास, कुलिक अर्धयाम और पात (रविचन्द्र की क्रान्ति की समता) को सभी शुभ कार्यों में त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि ये अशुभ काल एवं योग के रूप में माने गये है। साथ ही शुभ मुहूर्त्त में शुभ काल में तथा अष्टक वर्ग विचार करके एवं ग्रहों का बलाबल विचार करके शुद्ध समय में विवाह करना उत्तम फलों को प्रदान करता है ये सभी विषय इस इकाई में पूर्ण रूपेण दर्शाया गया है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप **'विवाह में काल निर्णय'** सही तरीके से कर सकते है साथ ही –

1. सप्तमेश की दशा काल में विवाह योग की जानकारी प्राप्त करेंगे।
2. प्रेम विवाह के काल का निर्णय कर पायेंगे।
3. दाम्पत्य भाव में स्थित ग्रहों के दशा काल में विवाह होने की जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. साथ ही सप्तमेश के दशा काल में विवाह योग की जानकारी पायेगें एवं उनसे दृष्ट ग्रहों की दशा काल में भी विवाह होते है, इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।
5. विवाह में वर्जिक काल की जानकारी पायेगे साथ ही त्रिज्येष्ठ विवाह में त्याज्य है इसकी भी जानकारी प्राप्त करेंगे।
6. ग्रह शुद्धि भी जानेगें।
7. प्रश्न कुण्डली के अनुसार विवाह योग की जानकारी प्राप्त करेगें।
8. ग्रहों के षड्वर्गी बल की जानकारी होगी।
9. साथ ही दशवर्ग विचार सहित ग्रहों के बलाबल का ज्ञान प्राप्त करेगें। अष्टक वर्ग विचार भी प्राप्त कर सकेगें।

2.3 विवाह में काल निर्णय

विवाह समय निर्धारण के लिये सर्वप्रथम कुण्डली में विवाह के योग देखे जाते है। इसके लिए सप्तम भाव, सप्तमेश व शुक्र से सम्बन्ध बनाने वाले ग्रहों का विश्लेषण किया जाता है। जन्म कुण्डली में जो भी ग्रह अशुभ या पापी होकर इन ग्रहों से दृष्टि युति या स्थिति के प्रभाव से इन ग्रहों से सम्बन्ध बना रहा होता है। वह ग्रह विवाह में विलम्ब का कारण बन रहा होता है। इसलिए सप्तम भाव, सप्तमेश व शुक्र पर शुभ ग्रहो का प्रभाव जितना अधिक हो उतना ही शुभ होता है तथा अशुभ ग्रहो का प्रभाव न होना भी विवाह का समय पर होने के लिये सही रहता है क्योंकि अशुभ या पापग्रह जब भी इन तीनों को या इन तीनों में से किसी एक को प्रभावित करते है। विवाह की अवधि में विलम्ब होता है। जन्म कुण्डली में जब योगों के आधार पर विवाह की आयु निर्धारित की जाये तो इसके बाद विवाह के कारक ग्रह शुक्र व विवाह के मुख्य भाव व सहायक भावो की दशा – अन्तर्दशा में विवाह होने की सम्भावनायें बनती है।

आइये देखे कि दशायें विवाह के समय निर्धारण में किस प्रकार सहयोग करती है –

1. **सप्तमेश की दशा** - जब कुण्डली के योग विवाह की संभावनायें बना रहे हो तथा व्यक्ति की ग्रह दशा में सप्तमेश का सम्बन्ध शुक्र से हो तो इस अवधि में विवाह होता है। इसके अलावा जब सप्तमेश जब द्वितीयेश के साथ ग्रह दशा में सम्बन्ध बना रहे हो, उस स्थिति में भी विवाह के योग बनते है।
2. **सप्तमेश में नवमेश की दशा** – अन्तर्दशा में विवाह ग्रह दशा का सम्बन्ध जब सप्तमेश व नवमेश का आ रहा हो तथा ये दोनों जन्मकुण्डली में पंचमेश से भी सम्बन्ध बनाते हो तो इस ग्रह दशा में प्रेम विवाह होने की संभावनाएँ बनती है।
3. **सप्तम भाव में स्थित ग्रहों की दशा में विवाह** – सप्तम भाव में जो ग्रह स्थित हो या उनसे पूर्ण दृष्टि सम्बन्ध बना रहे हो, उन सभी ग्रहों की दशा अन्तर्दशा में विवाह हो सकता है। इसके अलावा निम्न योगो में विवाह होने की संभावनाएँ बनती है -

   क. सप्तम भाव में स्थित ग्रह, सप्तमेश जब शुभ ग्रह होकर शुभ भाव में हो तो व्यक्ति का विवाह सम्बन्धित ग्रह दशा की आरम्भ की अवधि में विवाह होने की संभावनाएँ बनती है।

   ख. शुक्र सप्तम भाव में स्थित ग्रह या सप्तमेश जब शुभ ग्रह होकर अशुभ भाव या अशुभ ग्रह की राशि में स्थित होने पर अपनी दशा – अन्तर्दशा के मध्य भाग में विवाह की संभावना बनाता है।

ग. इसके अतिरिक्त जब अशुभ ग्रह बली होकर सप्तम भाव में स्थित हों या स्वयं सप्तमेव हो तो इस ग्रह की दशा के अन्तिम भाग में विवाह संभावित होता है।

4. **शुक्र का ग्रह दशा से सम्बन्ध होने पर विवाह** – जब विवाह कारक ग्रह शुक्र नैसर्गिक रूप से शुभ हो शुभ राशि, शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो तो गोचर में शनि, गुरू से सम्बन्ध बनाने पर अपनी दशा – अन्तर्दशा में विवाह होने का संकेत करता है।
5. **सप्तमेश के मित्रों की ग्रह दशा में विवाह** – जब किसी व्यक्ति की विवाह योग्य आयु हो तथा महादशा का स्वामी सप्तमेश का मित्र हो, शुभ ग्रह हो, व साथ ही साथ सप्तमेश या शुक्र से सप्तम भाव में स्थित हो, तो इस महादशा व्यक्ति के विवाह होने के योग बनते है।
6. **सप्तम व सप्तमेश से दृष्ट ग्रहों की दशा में विवाह** - सप्तम भाव को विवाह का भाव कहा गया है। इसीलिए जो ग्रह बली होकर इन सप्तम भाव सप्तमेश से दृष्टि सम्बन्ध बनाते है, उन ग्रहों की दशा अवधि में विवाह की संभावनाएँ बनती है।
7. **लग्नेश व सप्तमेश की दशा में विवाह** – लग्नेश की दशा में सप्तमेश की अन्तर्दशा में भी विवाह होने की सम्भावना बनती है।
8. **शुक्र की शुभ स्थिति** – किसी व्यक्ति की कुण्डली में जब शुक्र शुभ ग्रह की राशि तथा शुभ भाव में स्थित हो, तो शुक्र का सम्बन्ध अन्तर्दशा या प्रत्यन्तर्दशा के आने पर विवाह हो सकता है। कुण्डली में शुक्र पर जितना कम पापग्रह प्रभाव हो उतना ही कम प्रभाव होता है तथा वैवाहिक जीवन के सुख में उतनी ही अधिक वृद्धि होती है।
9. **शुक्र से युति करने वाले ग्रहों की दशा में विवाह** – शुक्र से युति करने वाले सभी ग्रह, सप्तमेश का मित्र अथवा प्रत्येक वह ग्रह जो बली हो तथा इनमें से किसी के साथ दृश्टि सम्बन्ध बना रहा हो, उन सभी ग्रहों की दशा – अन्तर्दशा में विवाह होने की सम्भावनायें बनती है।
10. **शुक्र का नक्षत्रपति की दशा में विवाह –** जन्म कुण्डली में शुक्र जिस ग्रह के नक्षत्र में स्थित हो, उस ग्रह की दशा अवधि में विवाह होने की संभावनायें बनती है। पुरूषों में शुक्र विवाह कारक ग्रह माना जाता है, जबकि स्त्रियों में गुरू से भी विवाह देखा जाता है।

विवाह में वर्जित काल का निर्णय –

वैवाहिक जीवन की शुभता को बनाये रखने के लिए काल का निर्णय करना अत्यावश्यक है, अन्यथा परिणय सूत्र की शुभता में कमी होने की संभावाना उत्पन्न होती है। कुछ समय वा काल विवाह के लिये विशेष रूप से शुभ समझे जाते है। इस कार्य के लिए अशुभ या वर्जित समझे जाने वाला भी समय होता है जिस समय में यह कार्य करना सही रहता है। आइए देखे कि विवाह में वर्जित काल कौन – कौन से है।

नक्षत्र व सूर्य का गोचर – नक्षत्रों में 10 नक्षत्रों को विवाह कार्य के लिए नहीं लिया जाता है। इसमें आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति आदि नक्षत्र आते है। इन दस नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो और सिंह राशि में गुरू के नवमांश में गोचर करे तो विवाह करना सही नही रहता है।

जन्ममास, जन्म तिथि व जन्म नक्षत्र में विवाह –

इन तीनों समयावधियों में अपनी बड़े सन्तान का विवाह करना सही नही रहता है। व जन्म नक्षत्र से दसवॉ नक्षत्र, सोलहवॉ नक्षत्र , तेइसवॉ नक्षत्र का त्याग करना चाहिए।

अन्य विचार – गुर्वादित्य (गुरू और सूर्य एक राशिस्थ) व्यतिपात (क्रान्तिसाम्य रूप) नाम से विष्कुम्भादियोगों में घटित दुष्ट योग, गुरू के वक्र अतिचार इसमें तथा चन्द्रमा शुक्र या वृहस्पति ये अस्त हो या बाल हो या वृद्ध हो तो उस समय में पौष, चैत्रमास में वर्षा समय (आषाढ़ शुक्ल 11 से कार्तिक शुक्ल 11 तक चतुर्मास्य) क्षय और अधिक मास में जिस समय केतु का उदय देखने में उस समय में जिस दिन सूर्य अंशहीन हो अर्थात् सूर्य के संक्रान्ति दिन और वृहस्पति सिंह या मकर में हो तो इस समयों में विवाह, उपनयन, यात्रा, नगर निर्माण प्रवेश, प्रसादा – निर्माण, चूड़ाकरण, वेदादि विद्या या शस्त्रादि विद्या, दीक्षादि कर्म यत्न से त्याग कर देना चाहिए । यथोक्तम् -

सर्वस्मिन् विधुपाप युक्त नुलवावर्द्धे निशाह्नोर्घटी
त्र्यशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम्।
उत्पातग्रहतोऽद्रयहानि शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं
षड्मासं ग्रह भिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातभम्।।

भावार्थ – पापग्रह से युक्त राशि लग्न और नवमांश सभी शुभ कार्यों में त्याज्य है। मध्य रात्रि और मध्य दिन के समय में 20 पल त्याज्य है। पापग्रह की राशियों (मेष, वृश्चिक, मकर, कुम्भ, सिंह) के नवमांश सूर्य ग्रहण – चन्द्रग्रहण से पूर्व के 3 दिन भुकम्पादि उत्पाद तथा ग्रहण के बाद 7 दिन तथा शुभप्रद उत्पात (असमय में फल पुष्पादि होने) से दुष्ट दिन इन सभी को सभी शुभ कार्यों में त्याग देना चाहिए एवं ग्रह से भेदित नक्षत्र और जिसमें दो ग्रहों का युद्ध (राशि, अंश, कला बराबर) हो उन नक्षत्रों को सब शुभकार्यो में 6 मास तक त्याग करना चाहिए। जन्म नक्षत्र जन्ममास, जन्म तिथि, व्यतिपात योग, भद्रा, वैधृति योग, अमावस्या, माता पिता के क्षय दिन, तिथी क्षय, तिथिवृद्धि , क्षय मास, मलमास कुलिक, अर्धयाम और पात (रविचन्द्र की क्रान्ति की समता) को सब शुभ कार्यो में त्याग कर देना चाहिए परिघ योग का पूर्वार्ध, शुक्ल योग के आरम्भ के 5 घड़ी सब शुभ कार्यो में त्याग देना चाहिए और जिस प्रकरण में जो त्याज्य कहे गये है उनका भी त्याग करके कार्यो का आरम्भ करना चाहिए।

वर – कन्या की वर्ष शुद्धि विचार -

कन्याया दशमे वर्षे नवमेऽप्यष्टमेऽपि वा।

वरस्य षोडशार्दुर्ध्व विवाहो यौवने शुभः ।।

भावार्थ – दसवें , नौवें , आठवें वर्ष में कन्या का और वर का 16 वर्ष के अनन्तर युवावस्था में अर्थात् (30 वर्ष के भीतर) विवाह शुभ है।

कन्या की संज्ञा –

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।

दशवर्षा च कन्या स्यादत उर्ध्व रजस्वला।।

भावार्थ - आठवें वर्ष में गौरी, नवम वर्ष में रोहिणी, दशम वर्ष में कन्या कहलाती है। दस वर्ष के बाद कन्या रजस्वला होती है।

गौरी ददन्नांगलोक लभते स्वस्थ रोहिणीम्।

कन्या ददन्मर्त्यलोकं रौवरं तु रजस्वलाम्।।

भावार्थ - गौरी दान करने से नागलोक , रोहिणी दान करने से स्वर्गलोक , कन्या दान करने से मृत्युलोक और रजस्वला दान करने से रौरव (नरक) पाता है।

गुरूशुद्धिवशेन कन्याकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात्।

रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामु भयोश्चन्द्र विशुद्धितोविवाहः ।।

भावार्थ - 6 वर्ष के उपर सम 8,10 वर्ष में गुरूशुद्धि होने पर कन्या का और रात्रि शुद्धि से वर का तथा कन्या और वर की चन्द्र शुद्धि से विवाह शुभ होता है।

रविशुद्धि –

जन्मराशेस्त्रिष्टायदशमेषु रविः शुभः ।

पश्चात् त्रयोदशांशेभ्यो विपश्चनवमेष्वपति।।

भावार्थ - जन्म राशि से 3,6,10,11 वें रवि शुभ है। यदि रवि 13 अंश से अधिक हो जाये तो 2,5,9 वीं राशि में भी शुभ होते है।

चन्द्र शुद्धि -

जन्मराशेशस्त्रिषष्टाद्य सप्तमायचयसंस्थितः।

शुद्धश्चन्द्रो द्विकोणस्थः शुक्ले चाऽन्यत्र निन्दितः।।

भावार्थ – जन्मराशि से 3,6,1,7,11,10 वें स्थान में चन्द्रमा शुभ होते है, 2,5,9 वें में शुक्लपक्ष में शुभ होते है। 4,8,12 वें में अशुभ होते है।

गुरू शुद्धि –

वटुकन्याजन्मराशे स्त्रिकोणयद्विसप्तगः ।

श्रेष्ठो गुरूः खषट्त्रयाद्ये पुजयाऽन्यत्र निन्दितः ॥

भावार्थ - बालक और कन्या की जन्म राशि से 2,5,7,9,11 वें स्थान में गुरू शुभ होते है तथा 3,6,9,10 इनमें शांति (जपदान) से शुद्ध होते है। 4,8,12 में अशुभ होते है।

विशेष -

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरू।

अशुभोऽपि शुभो ज्ञेयो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन ॥

भावार्थ - अपने उच्च में अपनी राशि में मित्र की राशि में अपने नवमांश में गुरू रहे तो अशुभ भी शुभ होते है और नीच तथा शत्रु की राशि में रहे तो शुभ भी अशुभ भी होता है। यहॉं गुरू उपलक्षण है – सभी सूर्यादि ग्रह अपने उच्चादि स्थान में रहने पर अनिष्ट स्थान में भी शुभ होता है।

विवाह प्रश्न - प्रश्न लग्न से विवाह के सम्बन्ध में विचार करते समय सप्तमेश का लग्नेश अथवा चन्द्रमा के साथ इत्थशाल योग हो तो शीघ्र ही विवाह होता है। यदि लग्नेश अथवा चन्द्रमा सप्तम भाव में हो तो भी शीघ्र विवाह होता है। सप्तमेश का जिस ग्रह के साथ इत्थशाल योग हो और वह ग्रह निर्बल पापयुक्त या पापदृष्ट हा तो विवाह नही होता अथवा बहुत बड़ी परेशानी के बाद विवाह होता है। सप्तम भाव में पापग्रह हो अथवा अष्टमेश हो तो विवाह होने के पश्चात् पति – पत्नी में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है तथा विवाह अत्यन्त अशुभ माना जाता है। सप्तम स्थान पर अथवा सप्तमेश पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो विवाह 3 महीने के मध्य ही हो जाती है।

लग्नेश, सप्तमेश तथा चन्द्रमा इन तीनों ग्रहों के स्वभाव, गुण, स्थान, दृष्टि आदि के द्वारा विवाह प्रश्न का उत्तर देना चाहिए।

काल बल से सम्बन्धित अन्य तथ्य –

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः ।

तस्माद्विवाहसमयः परिचिन्त्यते हि तन्निघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः ॥

भावार्थ - सुन्दर स्वभाव (सदा पति के अनुकूल चलने वाली) वाली स्त्री धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों वर्गो को देती है और पति को सहयोग देकर तीनों ऋणों से मुक्त कराती है। स्त्री की सुशीलता विवाहकालीन लग्न के अधीन है अर्थात् शास्त्रविहित शुभ मुहूर्त्त में विवाह होने से स्त्री का स्वभाव और आचरण पवित्र होता है। इसलिए विवाह का विचार (इस प्रकरण में) किया जाता है क्योंकि पुत्र सुसन्तति, शील सुन्दर स्वभाव और धर्म विवाहकालीन लग्न के अधीन होते है।

विशेष - यद्यपि जन्मकालिक ग्रह स्थितिवश मानवमात्र को शुभाशुभ फल भोगना अनिवार्य है, तथापि कार्यों में शुभ समयजनित अपूर्व फल से जन्मान्तरीय कर्मजन्य शुभाशुभ फल का उपशमन होकर नया प्रारब्ध बन जाता है, उसका फल तत्काल भोगना पड़ता है। अत: सब जीवों के लिये शुभ समय देखना आवश्यक है।

पहले अपनी शक्ति के अनुसार रत्न आदि (रत्न, द्रव्य, फल, पुष्प और वस्त्र) से गणक की पूजा करके प्रसन्नचित्त ज्योतिषी से कन्या के विवाह का प्रश्न पूछना चाहिये। उस समय विचार करते समय –

1. यदि प्रश्न लग्न से 3,5,7,10,11 वें स्थान में चन्द्रमा हो और उसकी वृहस्पति पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शीघ्र विवाह सम्बन्ध कराने वाला होता है।
2. अथवा वृष, तुला और कर्क लग्न हो और शुभ ग्रह से वृहस्पति, शुक्र, बुध और पूर्ण चन्द्र युक्त या दृष्ट है। या किसी शुभ ग्रह से युक्त और किसी से दृष्ट हो तो भी विवाह शुभ होता है।

अन्य विवाह योग –

विषमभांशगतौ शशि भार्गवौ तनुगृहं बलिनौ यदि पश्यत:।
रचयतो बरलाभमिमौ यदा युगलभांशगतौ युवतिप्रदौ ॥

भावार्थ - प्रश्न काल में विषम राशि 1,3,5,7,9 , 11 पुरूष संज्ञक राशि में और विषम राशि के नवमांश में चन्द्रमा तथा शुक्र हो और बलवान होकर लग्न को देखते हो तो कन्या के लिये वर का लाभ कन्या का विवाह होगा, ऐसा कहना चाहिए। स्त्री राशि में और सम राशि के ही नवमांश में स्थित होकर प्रश्न लग्न को देखते हो तो वर के लिये स्त्री का लाभ समझना चाहिये।

प्रश्न लग्न में यदि छठें या आठवें स्थान में चन्द्रमा हो –

अथवा प्रश्नलग्न में कोई पापग्रह हो और उससे सातवें स्थान में मंगल हो।

अथवा प्रश्न लग्न में चन्द्रमा हो और उससे सातवें स्थान में मंगल हो तो वह कन्या विवाह से 8 वर्ष के भीतर विधवा होगी ऐसा समझना चाहिए।

कुण्डली के अनुसार बल विचार –

जो भी ग्रह बली होता है वह विवाह आदि शुभ कार्यो में उत्तम फलों को प्रदान करता है तथा ग्रहो के कुल षड्बल माने गये है। जन्मपत्रिका यथार्थ फल ज्ञान करने के लिए षड्बल का विचार करना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि ग्रह अपनी बल के अनुसार ही फल देते है। साथ ही विवाहादि शुभ कार्यों में इन बली ग्रहो के अनुसार व्यक्ति के जीवन में अथवा भावी दम्पन्ती के दाम्पत्य काल में शुभ फलों का विचार होता है। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के बलाबल इस प्रकार है –

1.स्थानबल 2. दिग्बल 3. काल बल 4. चेष्टाबल 5. नैसर्गिक बल 6. दृग्बल।

स्थान बल –

स्वोच्चत्रिकोणस्वसुहृददृगाण राश्यंशवैशेषिकवर्गवन्तः।
आरोहवीर्याधिकविन्दुकास्ते खेचारिणः स्थानबलाधिकाः स्युः।।

यदि कोई ग्रह शुभफलकारक और बलवान होता है तो शुभ फल पूर्ण करता है, अशुभ फल कम। यदि कोई ग्रह दुष्टफलकारक है और बलवान है तो पाप फल कम करता है, दुर्बल है तो अधिक।

निम्नलिखित आठ परिस्थितियों में ग्रह बली होता है –

1. अपनी उच्च राशि में
2. अपनी मूल त्रिकोण राशि में
3. अपनी राशि में
4. अपने द्रेष्काण में
5. अपने नवमांश में
6. पारिजातादि में
7. आरोह वीर्ययुक्त – इसका अर्थ है जो ग्रह अपने परम नीच का त्याग कर अपने परमोच्च अंश की ओर जा रहा हो।
8. जिस राशि में ग्रह बैठा है, उस राशि में, उस ग्रह के अष्टकवर्ग में अधिक बिन्दु हों।

ग्रहों के निर्बल होने के कारण –

1. अपनी नीच राशि में हो
2. अपनी शत्रु राशि में हो
3. पापग्रह के साथ हो
4. पापग्रह से दृष्ट हो
5. पाप ग्रहों के वर्ग में हो
6. भावसंधि में हो
7. अपने अष्टक वर्ग में, जिस राशि में वह बैठा हो, उसमें थोड़े बिन्दु हो
8. दुरंश में हो अर्थात् पापग्रह के अंशों में हो

दिग्बल –

विलग्नपातालवधूनभोगा बुधामरेज्यौ भ्रगुसूनुचन्द्रौ।
मन्दो धरासूनुदिवाकरौ चेत् क्रमेण ते दिग्बलशालिनः स्युः।।

बुध और वृहस्पति लग्न में बली होते है। लग्न स्पष्ट यदि वृहस्पति के स्पष्ट के तुल्य हो तो पूर्ण बली। सप्तम में बुध या वृहस्पति हो तो सर्वथा बल हीन। बीच अनुपात त्रैराशिक से बल निकालना चाहिये। चन्द्रमा और शुक्र लग्न से चतुर्थ में पूर्ण बली, लग्न से दशम में दिग्बल शून्य। शनि सप्तम स्पष्ट के तुल्य हो तो पूर्ण बली, लग्न स्पष्ट के तुल्य हो तो सर्वथा निर्बल। मध्य में अनुपात से। सूर्य और मंगल दशम में पूर्ण बली, चतुर्थ में सर्वथा दिग्बलहीन।

जातकपद्धति में दिक्बल का गणितीय उदाहरण – जो लग्नस्पष्ट है वही वृहस्पति स्पष्ट है तो वृहस्पति को षष्ठयंश बल मिला। यदि वृहस्पति स्पष्ट सप्तम स्पष्ट के तुल्य है तो वृहस्पति को शून्य बल। यदि वृहस्पति लग्न स्पष्ट से 60 अंश दूर है तो 40 षष्टि अंश, यदि 120 अंश दूर है तो 20 षष्टि अंश। मध्य में अनुपात से बल निकाला जाता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का दिग्बल – कहॉं उसको पूर्ण बल प्राप्त है। कहॉं शून्य, यह विचार रखते हुये अनुपात से त्रैराशिक निकालते है। दिग्बल का तात्पर्य है - लग्न पूर्व है, सप्तम पश्चिम, दशम दक्षिण, चतुर्थ उत्तर। पूर्व में बुध वृहस्पति बली , दक्षिण में सूर्य, मंगल, पश्चिम में शनि तथा उत्तर में चन्द्रमा और शुक्र बली होते है। इसी कारण इसे दिक् अर्थात् दिशा बल कहा गया।

काल बल –

> **निशीन्दुमन्दावनिजा: परेऽहनि स्वकीयहोरासममासवासरा:।**
> **सितादिपक्षद्वयगा: शुभाशुभा बुध: सदा कालजवीर्यशालिन:॥**

कालबल के सम्बन्ध में ग्रन्थकार 6 नियमों का निर्देश करते हैं कि किसी ग्रह को कालबल कब प्राप्त होता है –

1. चन्द्रमा, मंगल और शनि रात्रि में बलवान होते है। सूर्य, वृहस्पति, शुक्र दिन में। बुध सदैव
2. प्रत्येक ग्रह अपने वर्ष में, अपने मास में, अपने दिन में, अपनी होरा में बलवान होते है।
3. शुभग्रह शुक्ल पक्ष में बलवान होते है, पापग्रह कृष्ण पक्ष में।

उपर द्वितीय स्थान में चार प्रकार के बल कहे गये है – वर्षबल, मासबल, दिनबल एवं होराबल। दिन बल प्रसिद्ध है। मंगलवार को जन्म हो तो मंगल को दिनबल प्राप्त होगा। अन्य छ: ग्रहों को दिनबल के अन्तर्गत 0 (शून्य)। बुधवार को जन्म हो तो बुध को दिनबल प्राप्त होगा अन्य ग्रहों को दिनबल के अन्तर्गत शून्य आदि। होराबल के लिये यह देखना चाहिये कि किस ग्रह की होरा में जन्म है। दिन रात्रि में एक – एक घण्टे की 24 होरा होती है। जिस ग्रह की होरा में जन्म हो उसको 1 रूप 60 षष्टि अंश, होराबल प्राप्त होता है अन्य को इस होराबल के अन्तर्गत 0।

चेष्टा बल -

जैत्रा वक्रसमागमोपगसितज्ञारामोरेज्यासिता: ।

दिव्याशायनगेन्दुतिग्मकिरणौ चेष्टाबलांशाधिका: ।।

चेष्टा बल उसे कहते है – 1. जो मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र या शनि युद्ध में विजयी होते है – अर्थात् उपर्युक्त दो ग्रहों में यदि युद्ध हो तो उन दोनों में जो ग्रह जयी होता है, वह बली होता है। सूर्य, चन्द्र का किसी ग्रह से युद्ध नहीं होता – केवल पॉच ताराग्रहों का युद्ध हो सकता है।

2. इन पॉच ग्रहों में जो – एक, दो, तीन, चार या पॉचों जो वक्री हो, वे बली होते है।

3. इन पॉच ग्रहों में कोई एक या अधिक जिसका चन्द्रमा से समागम हो वह बली होता है।

4. सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण में बली होता है।

सूर्य की सायन मेषसंक्रान्ति से सायन तुला संक्रान्ति तक अर्थात् लगभग 21 मार्च से 22 सितम्बर तक उत्तर क्रान्ति रहती है। चन्द्रमा की प्राय: सायन मेष में प्रवेश करने से सायन तुला प्रवेश तक उत्तरा क्रान्ति रहती है।

नैसर्गिक बल –

सौम्यक्षेपयुता महीसुतमुखाश्चेष्टाबलाढया: क्रमान्
नैसर्गस्य बलाधिका: शनिकुजज्ञाचार्यशुक्रेन्द्विना: ।।
क्रमेण दृक्स्थाननिसर्गचेष्टादिक्कालवीर्याणि च षड्बलानि।
सुधाकरेष्विन्दुशरेन्दुशैलभेदानि तानि प्रवदन्ति सन्त: ।।
स्वरूपष्ष्ट् यंशविषष्टिकांशा मृगादिवीर्योपगषड्बलाढ्या: ।
क्रमेण तद्योगभवं ग्रहाणां बलं हि पूर्ण त्रिपदं दलं वा ।।

शनि से अधिक बली मंगल, मंगल से अधिक बली बुध, बुध से अधिक बली वृहस्पति, वृहस्पति से अधिक बली शुक्र, शुक्र से अधिक बली चन्द्रमा और चन्द्रमा से अधिक बली सूर्य होता है।

इसी निसर्ग बल को पद्धतिकारों ने इस प्रकार कहा है। सूर्य का 60 षष्ट्यंश, चन्द्रमा का 51.43, शुक्र का 42.85, वृहस्पति का 34.28, बुध का 25.70, मंगल का 17.14 तथा शनि का 8.57 षष्टि अंश बल होता है। **बल का भेद** – दृक्बल का 1 भेद। शुभ ग्रहों की दृष्टि अधिक हो, पापग्रहों की दृष्टि न्यून हो तो शुभ दृष्टियोग में से पाप दृष्टि योग घटाना। शेष + धन दृक्बल। यदि पाप दृष्टि शुभ दृष्टि से अधिक हो पापदृष्टि में से शुभदृष्टि घटाना। शेष ऋण दृष्टि बल। जब शेष – ऋण होता है तो उसे अन्य पॉचों के योग में घटाने पर जो शेष रहता है वह ग्रह का षड् बल पिंड कहलाता है।

बल प्रमाण –

अर्धाधिकं षट्कमिनस्य सूरेः शुक्रस्य पंचाधिकमर्धरूपम् ।

सप्तेन्दुपुत्रस्य बलं षडिन्दोः सौरारयोः सायकरूपसंख्या ॥

छः बलों के योग को षड्बल पिंड कहते है, जो इस प्रकार है –

सूर्य ६.५, चन्द्रमा ६, मंगल ५, बुध ७, वृहस्पति ६.५, शुक्र ५.५, तथा शनि ५ । बल परिमाण षष्टि अंशों में –

	स्थान	**काल**	**दिक्**	**चेष्टा**	**अयन**
सूर्य	१६५	११२	३५	५०	३०
चन्द्र	१३३	१००	५०	३०	४०
मंगल	९६	६७	३०	४०	२०
बुध	१६५	११२	३५	५०	३०
गुरू	१६५	११२	३५	५०	३०
शुक्र	१३३	१००	५०	३०	४०
शनि	९६	६७	३०	४०	२०

स्थान, काल आदि कि नीचे १६५ आदि संख्या षष्टि अंशों की है । ६० षष्टि अंशों का एक रूप होता है । उपर जो प्रत्येक बल में यह कहा कि कम से कम इतने षष्टि अंश स्थान बल में प्राप्त होने चाहिये इसके दो प्रयोजन है । प्रथम प्रयोजन उदाहरण द्वारा स्पष्ट है – जैसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये यह कहा जाये कि योग में ५० प्रतिशत अंक प्राप्त होने चाहिए किन्तु प्रत्येक प्रश्नपत्र में 40 प्रतिशत । जो ग्रह उच्च बल से युक्त होता है वह अत्यन्त अधिक वैभव करता है । मूल त्रिकोण गत ग्रह राजा का मंत्री या सेनापति बनाता है । यदि ग्रह स्वराशि का हो तो जातक को प्रमुदित, धन , धान्य से युक्त सम्पत्तिशाली बनाता है । यदि मित्र के घर में हो तो जातक को यशस्वी करता है । वह तेजस्वी, सुन्दर और स्थिर सम्पत्ति वाला होता है । उसे राजा से धन प्राप्त होता है । यदि ग्रह होरा में बलवान हो तो जातक पराक्रमी होता है । द्रेष्काण में बली ग्रह जातक को गुणी बनाता है । जो ग्रह अपने नवमांश में बली हो वह जातक को प्रसिद्धि प्रदान करता है । सप्तमांश में बली ग्रह मनुष्य को साहसी, धनी ओर कीर्तियुक्त करता है । द्वादशांश में बली जातक को कर्मठ और परोपकारी बनाता है । त्रिशांश में बली हो तो जातक सुखी और गुणवान होता है ।

पुरूष या स्त्री राशि में बली ग्रह जातक को जन – पूजित और कला कुशल बनाता है । ऐसा जातक प्रसन्नचित्त, स्वस्थ और परलोक – भीरू होता है । अयनबली ग्रह अपनी दशा में विविध धन लाभ कराता है । यदि ग्रह अपनी नीच राशि में न हो और अस्त न हो तो जातक कीर्तिमान होता है ।

चेष्टाबल युक्त ग्रह क्वचित् राज्य दिलाता है, क्वचित् सम्मान प्राप्त कराता है, क्वचित् द्रव्य दिलाता है, क्वचित् यश । यह भिन्न – भिन्न प्रकार के फल करता है ।

वक्री ग्रह अत्यन्त बली होते है। शुभ ग्रह वक्री होने से राज्य प्रदान करते है। पाप ग्रह वक्री होने से दु:ख प्रदान करते है और जातक को वृथा भ्रमण करता है।

जो ग्रह रात्रि – दिन सम्बन्धी बल से युक्त हो वह जातक के शौर्य की वृद्धि करता है। ऐसा जातक लक्ष्मीवान होता है और शत्रुओं को परास्त करता है। जो ग्रह वर्षबल, मासबल, दिवसबल, होराबल से युक्त हो वह अपनी दशा में धन और यश देता है। वर्षबली से अधिक शुभ फल मासबली का, मासबली से अधिक शुभ फल दिवसबली का और दिवसबली से अधिक शुभफल होराबली ग्रह का होता है। जो ग्रह पक्षबल में बली हो वह शत्रुओं का नाश कराता है। रत्न, वस्त्र हाथी ओर सम्पत्ति प्राप्त कराता है। जातक को स्त्री, कनक , भूमि और कीर्ति का लाभ कराता है। जो ग्रह सब प्रकार के बल से युक्त हो, प्रकाशमान किरणों से युक्त हो वह जातक के मनोरथों से भी अधिक राज्य और सौख्य प्रदान करते है।

कुण्डली में ये बल बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखते है तथा अब इसका सूक्ष्म रूप से आनयन की विधि के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

ग्रहों के उच्चानीच राश्यंश बोधक चक्र –

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	राहु	केतु
उच्च राश्यंश	मेष 10°	वृष 5°	मकर 28°	कन्या 15°	कर्क 5°	मीन 27°	तुला 20°	वृष, मिथुन 0	धनु 0
नीच राश्यंश	तुला 10°	वृश्चिक 5°	कर्क 28°	मीन 15°	मकर 5°	कन्या 27°	मेष 20°	धनु 0°	मिथुन 0°

युग्मायुग्म बल साधन – चन्द्र और शुक्र सम राशि – वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर एवं मीन या सम राशि के नवमांश में हो तो 15 कला बल होता है। यदि ये ग्रह सम राशि और सम नवमांश दोनों में हो तो 30 कला बल होता है और दोनों में न हो तो शून्य कला बल होता है। सूर्य, भौम, बुध, गुरू और शनि विषम राशि या विषम नवमांश में हो तो 15 कला बल दोनों में हो तो 30 कला बल और दोनों में ही न हो तो शून्य कला युग्मायुग्म बल होता है।

उदाहरण - सूर्य जन्मकुण्डली में मेष राशि का और नवमांश कुण्डली में कर्क राशि का हो तो यहॉं मेष राशि विषम है ओर नवमांश राशि सम है। अत: सूर्य का युग्मायुग्म बल 15 कला हुआ। चन्द्रमा जन्मकुण्डली में वृष राशि और नवमांश कुण्डली में मकर राशि में है, ये दोनों ही राशियॉं विषम है अत: चन्द्रमा का युग्मायुग्म बल 30 कला होगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी जानना चाहिये।

ग्रहों का नैसर्गिक मैत्री विचार – **सूर्य** के चन्द्रमा, मंगल और वृहस्पति **मित्र**, शुक्र और शनि **शत्रु**

एवं बुध सम है। **चन्द्रमा** के सूर्य और बुध **मित्र**, मंगल, वृहस्पति, शुक्र और शनि **सम** है तथा चन्द्रमा का कोई शत्रु नहीं होता है। **मंगल** के सूर्य, चन्द्रमा एवं वृहस्पति **मित्र**, बुध शत्रु शुक्र और शनि **सम** है। **बुध** के सूर्य और शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु एवं मंगल, वृहस्पति और शनि सम है। **वृहस्पति** के सूर्य, चन्द्रमा और मंगल **मित्र**, बुध और शुक्र शत्रु एवं शनि सम है। **शुक्र** के बुध, शनि मित्र सूर्य एवं चन्द्रमा शत्रु और मंगल, वृहस्पति सम है। **शनि** के बुध और शुक्र मित्र सूर्य, चन्द्रमा और मंगल शत्रु एवं वृहस्पति सम है।

नैसर्गिक मैत्री बोधक चक्र –

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि	राहु
मित्र	चन्द्र, मंगल, गुरू	सूर्य, बुध	रवि,चन्द्र गुरू	सूर्य, शुक्र, राहु	सूर्य, चन्द्र मंगल	बुध, शनि, राहु	बुध, शुक्र राहु	शनि, बुध
शत्रु	शुक्र, शनि, राहु	……	बुध, राहु	चन्द्र	बुध, शुक्र	सूर्य, चन्द्र	सूर्य, चन्द्र मंगल	सूर्य, चन्द्र मंगल
सम	बुध	मंगल, गुरू, शुक्र, शनि राहु	शुक्र, शनि	मंगल, गुरू, शनि	शनि, राहु	मंगल, गुरू	गुरू	गुरू

तात्कालिक मैत्री विचार – जो ग्रह जिस स्थान में रहता है, वह उससे दूसरे, तीसरे, चौथे, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें ग्रहों के साथ मित्रता रखता है, तात्कालिक मित्र होता है और अन्य स्थानों – 1,5,6,7,8,9 के ग्रह शत्रु होते है। 1,2,3,4,10,11,12 मित्र ग्रह होते है। जन्मपत्री बनाते समय निसर्ग मैत्री चक्र लिखने के अनन्तर जन्म लग्न कुण्डली के ग्रहों का उपयुक्त नियम के अनुसार तात्कालिक मैत्री चक्र भी लिखना चाहिये।

पंचधा मैत्री विचार – नैसर्गिक और तात्कालिक मैत्री इन दोनों के सम्मिश्रण से पॉच प्रकार के मित्र शत्रु होते है – 1. अतिमित्र 2. अतिशत्रु 3. मित्र 4. शत्रु और 5. उदासीन – सम।

तात्कालिक और नैसर्गिक दोनों जगह मित्र होने से अतिमित्र, दोनो जगह शत्रु होने से अतिशत्रु, एक में मित्र और दूसरे में सम होने से मित्र एक मे सम और दूसरे में शत्रु होने से शत्रु एवं एक में शत्रु और दूसरे में मित्र होने से सम उदासीन ग्रह होते है। जन्मपत्री से इस पंचधा मैत्रीचक्र भी लिखना चाहिये –

पारिजातादि विचार : - पारिजातादि विचार करने के लिये पहले दस वर्ग चक्र बना लेना चाहिये। इस चक्र की प्रक्रिया यह है कि पहले जो होरा, देष्काण, सप्तमांश आदि बनाये गये है। उन्हें एक साथ लिखकर रख लेना चाहिए। इस चक्र में जो ग्रह अपने वर्ग अतिमित्र के वर्ग या उच्च के वर्ग में हो उसी स्वक्षादि वर्गी संज्ञा होती है। जिस जन्मपत्री में दो ग्रह स्वक्षादि वर्गी हो उनकी पारिजात संज्ञा,

तीन की उत्तम, चार की गोपुर , पॉच की सिंहासन , छ: की पारावत , सात की देवलोक , आठ की ब्रह्मलोक , नौ की एरावत और दस की श्रीधाम संज्ञा होती है। ये सब लोग विशेष है।

२	३	४	५	६	७	८	९	१०	वर्गैक्य
पारिजात	उत्तम	गोपुर	सिंहासन	पारावत	देवलोक	ब्रह्मलोक	ऐरावत	श्रीधाम	यो.वि

कारकांश कुण्डली बनाने की विधि – सूर्यादि सात ग्रहों में जिसके अंश सबसे अधिक हो वही आत्मकारक ग्रह होता है। यदि अंश बराबर हो तो उनमें जिनकी कला अधिक हो वह तथा कला भी समान होने पर जिसकी विकला अधिक हो वह आत्म कारक होता है। आत्मकारक से अल्पांश वाला अमात्य कारक, उससे न्यून अंश वाला भ्रातृकारक क्रमश: न्यून अंश वाला मातृ कारक, पितृ कारक, पुत्र कारक, जाति कारक, पति/ दारा कारक। अन्य आचार्यों के मत में पुत्रकारक के स्थान में पितृकारक माना गया है। कारकांश कुण्डली निर्माण की प्रक्रिया यह है कि आत्मकारक ग्रह जिस राशि के नवमांश में हो उसको लग्न मानकर सभी ग्रहो को यथास्थान रख देने से जो कुण्डली होती है, उसी को कारकांश कुण्डली कहते है।

स्वांश कुण्डली के निर्माण की विधि – स्वांश कुण्डली का निर्माण प्राय: कारकांश कुण्डली के समान होता है। इससे लग्नराशि कारकांश कुण्डली की ही मानी जाती है, किन्तु ग्रहों की स्थापन अपनी – अपनी नवमांश राशि में किया जाता है। तात्पर्य यह कि नवमांश कुण्डली में ग्रह जिस – जिस राशि में आये है, स्वांश कुण्डली में भी उस – उस राशि में रखे जायेंगे।

2.5 सारांश

विवाह दो आत्माओं का पवित्र बन्धन है। इसलिये इसमें काल का निर्णय करना परम आवश्यक है। एक व्यक्ति के बाहरी आकर्षण तो हो सकता है, लेकिन आंतरिक रूप से वह कठोर हृदय वाला और स्वार्थी हो सकता है। इसलिये उत्तम निर्वाह के लिये विवाह बन्धन से पूर्व उचित काल निर्णय पूर्वक मेलापक का विचार करना चाहिये। तथा सिद्ध मुहूर्त काल में विवाह होना उचित है। कुण्डली के द्वादश भावों में सप्तम भाव दाम्पत्य का होता है, इस भाव के अलावा आयु, भाग्य, सन्तान सुख कर्म स्थान का पूर्णत: ज्ञान करके विवाह करना उत्तम होता है। इसलिये उत्तम सन्तान सही समय पर विवाह करने एवं शुभ मुहूर्त के योग से ही प्राप्त होता है। अत: इसका विचार इस इकाई में पूर्णतया बताया गया है, जिससे मानव समाज अध्ययन के पश्चात् लाभान्वित होगा।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

गुर्वादित्य – गुरू और सूर्य एक राशि में हो,

अष्टवर्षा – आठवें वर्ष तक,

जन्मराशे शस्त्रिषष्टाद्य – जन्म राशि से 3,6,1 स्थान में चन्द्रमा का रहना,

भार्या – पत्नी,

त्रिवर्गकरणम् – धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों को देने वाली,

विषम राशि – 1,3,5,7,9,11 राशियॉं,

राश्यंश – राशि और अंश दोनों होता है,

तात्कालिक मैत्री – जो ग्रह जिस स्थान में रहता है। वह उससे दूसरे – तीसरे – चौथे – दसवें – ग्यारहवें और बारहवें स्थान में स्थित ग्रहों के साथ मित्रता रखते है।

होरा – 15 अंश का एक होरा होता है, इस प्रकार एक राशि में दो होरा होती है। ,

द्रेष्काण – 10 अंश का एक द्रेष्काण होता है, इस प्रकार एक राशि में तीन द्रेष्काण होते है।

सप्तमांश – 4 अंश 17 कला 8 विकला का एक सप्तमंश होता है।

नवमांश – एक राशि के नौवें भाग को नवमांश या नवांश कहते है।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्नोत्तर

1. प्रेम विवाह होने की सम्भावना कब होती है ?

उत्तर – सप्तमेश में नवमेश की दशा अन्तर्दशा में विवाह ग्रहदशा का सम्बन्ध जब सप्तमेश व नवमेश का आ रहा हो, तथा ये दोनों जन्म कुण्डली में पंचमेश से भी सम्बन्ध बनाते हो तो इस ग्रह दशा काल में **प्रेम विवाह** होने की सम्भावनायें बनती है।

2.किन - किन ग्रहों की दशा काल में विवाह होता है।

उत्तर – सप्तम भाव में जो ग्रह स्थित हो या उनसे पूर्ण दृष्टि सम्बन्ध बना रहे हो, उन सभी ग्रहों को दशा – अन्तर्दशा में विवाह हो सकता है।

3.किस नक्षत्र काल में विवाह वर्जित है।

उत्तर – 27 नक्षत्रों में 10 नक्षत्रों को विवाह कार्य के लिये नहीं ग्रहण किया जाता है। इनमें आर्द्रा, पुनर्वसु , पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती आदि नक्षत्र आते है। इन दस नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र हो और सूर्य सिंह राशि में गुरू के नवमांश में गोचर करे तो विवाह करना उत्तम नही होता।

4.किस वर्ष काल में विवाह शुभ माना जाता है।

उत्तर – ज्योतिष के अनुसार अष्टम, नवम तथा दसवें वर्ष में, किन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 18- 20 वें वर्ष में कन्या का विवाह तथा 25- 30 वें वर्ष में पुरूष का विवाह करना शुभ होता है।

5.कन्या को किन – किन संज्ञाओं से जाना जाता है।

उत्तर – आठवें वर्ष में गौरी, नवम वर्ष में रोहिणी, दशम वर्ष में कन्या कहलाती है। दस वर्ष के बाद कन्या रजस्वला कहलाती है।

6.कन्याओं का दान फल बताइये।

उत्तर – गौरी का दान करने से नागलोक, रोहिणी को दान करने से स्वर्ग लोक , कन्या को दान करने से मृत्युलोक की प्राप्ति होती है एवं रजस्वला को दान करने से रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय ज्योतिष – नेमिचन्द्र शास्त्री
2. मुहूर्त्त चिन्तामणि – रामदैवज्ञ
3. वृहज्ज्योतिसार – रूप नारायण शर्मा
4. वृहदवकहड़ा चक्रम – अवध बिहारी त्रिपाठी

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

जातक पारिजात – आचार्य वैद्यनाथ
मुहूर्त्तचिन्तामणि – रामदैवज्ञ
मेलापक मीमांसा – मृदुला त्रिवेदी

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विवाह में काल निर्णय को स्पष्ट कीजिये।
2. ग्रहों के बलाबल विषय पर टिप्पणी लिखिये।

इकाई – 3 वर एवं कन्या वरण

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

ज्योतिष विषय से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इस इकाई में वर - कन्या वरण का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। प्रत्येक माता – पिता का अपने सन्तानों का सुयोग्य विवाह सम्पन्न कराना उनका नैतिक दायित्व है, क्योंकि उन्हीं से फिर उनका उत्तम भविष्य का निर्धारण होता है। इसलिये इसका विचार अवश्य ही कर लेना चाहिये।

विवाह योग्य अच्छे वर – वधु की जानकारी प्राप्त करने के लिये उनके पारिवारिक परिचय तथा जन्मांकों की आवश्यकता होती है। आजकल कुण्डी मिलान प्राय: लोग नहीं करते है , जबकि इससे काफी नुकसान होता है। अत: इस इकाई में वर्णित वर – कन्या मेलापक करके विवाह संस्कार करने से पारिवारिक जीवन धन – धान्य से समृद्ध होगा, तथा वैभव की प्राप्ति होगी।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप लोग वर – कन्या की पूर्णतया जानकारी प्राप्त करेंगे। साथ ही -

1. वर कन्या वरण के मुहूर्त्त के बारे में जानकारी प्राप्त होगी
2. साथ ही ग्रह शुद्धि की जानकारी पायेगें।
3. वर कन्या कुण्डली मिलान के अन्तर्गत मांगलिक दोष की जानकारी प्राप्त होगी।
4. अष्टकूट मेलापक विचार जानेंगे साथ ही इनके परिहार की भी जानकारी होगी।
5. राशियों के तत्व ज्ञान के साथ भद्रादि की जानकारी पायेंगे।
6. सगाई एवं कन्या की गोद भराई की जानकारी प्राप्त कर पायेगें।
7. लग्न पत्रिका लेखन के सम्बन्धित जानकारी एवं वर – कन्या की वर्ष शुद्धि की जानकारी पायेगें।
8. विवाह कब होगा इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

3.3 वर एवं कन्या वरण

वर एवं कन्या वरण विवाह के सर्वप्रथम सोपान है। सर्वप्रथम हम विचार करें तो वर अथवा कन्या वरण के माध्यम से (वर – कन्या के भाई एवं पिता के सहायता से वरण कर्म होने के पश्चात्) भावी दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते है। यूँ कहे तो वर शब्द को दो रूपों में बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त है। एक तो किसी कन्या के विवाह हेतु वर यानि दुल्हा और दूसरा देवी – देवता, भगवान आदि के द्वारा दिया हुआ वर या वरदान। ध्यान रहे वर और वरण शब्द में बहुत गहरा सम्बन्ध है। वस्तुत: वर

शब्द किसी व्यक्ति, स्थान, स्थिति गुण या भाव के साथ जुड़ता है तो वह उसकी उस विशेष पूर्णता को ही दर्शाता है।

जैसे - भगवान कहते है कि कोई वर मॉगो, फिर भक्त ने कहा – मुझे राज्य चाहिये और फिर उसे राज्य मिला। अर्थात् उसने मिले राज्य का वरण किया। तो ये व्यक्ति स्थान, स्थिति, गुण, इच्छा (भाव) आदि के सभी अंगों की पूर्णता हुई की नही। इसी तरह किसी लड़की के विवाह हेतु योग्य वर की तलाश जैसे शब्द भाव क्या कहते है, विचार करने पर प्रतीत होता है कि लड़की में जो योग्यता (पूर्ण रूप में) है, उसी के अनुरूप सभी अंगों से पूर्ण वर की प्राप्ति हो जाना। प्राप्त हो जाने के पश्चात् कहा जाता है कि उस कन्या ने उस वर को पति रूप में वरण किया।

विशिष्ट वहनम् इति विवाहः अर्थात् विशिष्ट उत्तरदायित्वों को धारण करने का नाम विवाह संस्कार है। नर – नारी द्वारा एक दूसरे के प्रति अपनी विशिष्टताओं का समर्पण, दो आत्माओं का पवित्र मिलन, एक सम्मिलित नवीन इकाई का निर्माण एवं नये परिवार, नये समाज एवं आदर्श समाज की स्थापना का मूल आधार विवाह है।

विवाह मात्र एक सामाजिक समझौता नहीं, अपितु जन्म जन्मान्तरों तक साथ निभाने का शपथ समारोह, इष्ट मित्रों की साक्षी में यज्ञाग्नि शक्तियों के साथ, सात परिक्रमाओं के माध्यम से सात वचन के साथ लिया गया संकल्प ही गृहस्थ जीवन का आधार है जो विवाह के रूप में होता है। आश्रमों में गृहस्थ आश्रम की सर्वश्रेष्ठ स्थान है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर व्यक्ति अपने आप को संतुलित बनाते हुये सत्कर्मों द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है। गृहस्थ एक तपोवन है, जिसमें संयम, सेवा और सहिष्णुता की साधना करनी पड़ती है।

कन्या वरण मुहूर्त्त -

विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रेर्वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः।
वस्रालंकारादिसमेतैः फलपुष्पैः सन्तोषयादौ स्यादनु कन्यावरणं हि॥

भावार्थ – उत्तराषाढ़ा, स्वाती, श्रवण, तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद), अनुराधा, धनिष्ठा एवं कृतिका इन 9 नक्षत्रों में अथवा विवाह में विहित नक्षत्रों में पहले वस्र, आभूषण, द्रव्य, फल, पुष्प आदि से कन्या को सन्तुष्ट कर के तदनन्तर कन्या का वरण करें।

वर वरण मुहूर्त्त -

धरिणदेवोऽथवा कन्यकासोदरः शुभदिने गीतवाद्याभिः संवृतः।
वरवृतिं वस्रयज्ञोपवीतादिना ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वात्रयैराचरेत्॥

अर्थात् - शुभ दिनों (शुभवार, शुभतिथि, शुभयोग) में ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), कृत्तिका

एवं तीनो पूर्वा, इन 8 नक्षत्रों अथवा विवाह में विहित मुहूर्त्त में ब्राह्मण कन्यापक्षीय पुरोहित अथवा कन्या का सगा भाई वस्त्र, यज्ञोपवीत, फल, मेवा, द्रव्य पात्र अक्षत नारियल, सुपारी , श्वेत चन्दन तथा हल्दी आदि वस्तुओं से वर का वरण करें। इसे वर वरण या तिलक भी कहते है।

विवाह काल में ग्रह शुद्धि -

गुरूशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात्।

रविशुद्धवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः ।।

भावार्थ – कन्या के जन्म से 6 वर्ष की उम्र के बाद सम 8,10,12 वर्षों में रजोदर्शन के पहले वृहस्पति की शुद्धि और वर को सूर्य की शुद्धि से विषय वर्षो में एवं दोनों को चन्द्र की शुद्धि से विवाह करना उत्तम होता है।

सूर्य, चन्द्र, गुरू शुद्धि बोधक चक्र वरकन्या वरण – यज्ञोपवीत,विवाह आदि के लिये –

वर का	**दोनों का**	**कन्या का**	**फल**
सूर्य	चन्द्र	गुरू	**ग्रह**
३,६,१०,११	१,२,३,५,६,७,९,१०,११	२,५,७,९,११	**शुभ**
१,२,५,७,९	अमावस्या समीप अस्त	१,३,६,१०	**सम**
४,८,१२	४,८,१२	४,८,१२	**अशुभ**

सुन्दर विचार और शिष्टाचरण वाली स्त्री धर्म, अर्थ और काम को देने वाली होती है। उसका उस प्रकार का आचरण होना लग्न के वश में होता, इसलिए विवाह समय में इसका विचार करना चाहिए, क्योंकि पुत्र स्वभाव , आचरण और धर्म ये सब विवाह समय के अधिन है।

चूँकि आप लोग इस तथ्य को भली – भॉति जान गये है कि वैवाहिक गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने के लिए सर्वप्रथम आधार वर – कन्या ही है। अत: इस इकाई में उपरोक्त जो मुहूर्त्त दर्शायें गये है वही मुहूर्त्त प्रामाणिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। तथा सभी मुहूर्त्तो में विवाह विषय की चर्चा की गई है। अत: आपको मूल रूप से यह समझना चाहिए कि विवाह तथा वर – कन्या वरण दोनों ही मुहूर्त्त एक दूसरे के पूरक है । विवाह प्रकरण में वरवरण तिलक का मुहूर्त्त इस प्रकार दर्शाया गया है –

वरवृत्तिं शुभे काले गीतवाद्यादिभिर्युतः।

ध्रुवभे कृतिकापूर्वा कुर्याद्वापि विवाहभे ।।

उपवीतं फलं पुष्पं वसांसि विविधानि च।

देयं वराय वरणे कन्याभ्राता द्विजेन वा ।।

अर्थात् मुहूर्त्त में गीत वाद्य से युक्त होकर ध्रुवसंज्ञक, कृत्तिका, तीनों पूर्वा और विवाह में कहे हुए नक्षत्रों में यज्ञोपवीत, फल पुष्प तथा अनेक प्रकार के वस्त्र, रत्न आदि से युक्त होकर कन्या का भाई या ब्राह्मण वर का वरण तिलक करें।

अथ कन्या वरण –

पूर्वात्रय श्रवण मित्रभ वैश्वदेव होताशवासवसमीरणदैवतेषु।

द्राक्षाफलेक्षु कुसुमाक्षतपूर्णपाणिस्रान्तशान्तहृदयो वरयेत्कुमारीम्॥

भावार्थ – तीनों पूर्वा, श्रवण, अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, स्वाती और विशाखा इन नक्षत्रों में अंगुर आदि फल, गन्ने की गड़ेरी फूल तथा अक्षत से पूर्ण अञ्जलिबद्ध होकर शान्तिपूर्वक कुमारी का वरण करना शुभ है।

वर – कन्या की वर्ष शुद्धि विचार –

कन्याया दशमे वर्षे नवमेऽप्यष्टमेऽपि वा।

वरस्य षोडशादूर्ध्व विवाहो यौवने शुभः॥

भावार्थ – दसवें, नवमें, आठवें वर्ष में कन्या का और वर का 16 वर्ष के अनन्तर युवावस्था में विवाह शुभ होता है।

रवि शुद्धि –

जन्मराशेस्त्रिषष्ठायदशमेषु रविः शुभः।

पश्चात् त्रयोदशांशेभ्यो द्विपञ्चनवमेष्वपि॥

भावार्थ – जन्म राशि से ३,६,१०,११ वें रवि शुभ है। यदि रवि १३, अंश से अधिक हो जाय तो २,५,९ वीं राशि में भी शुभ होते है।

चन्द्र शुद्धि –

जन्मराशेस्त्रिषष्ठाद्य सप्तमायरवसंस्थितः।

शुद्धश्चन्द्रो द्विकोणस्थः शुक्ले चाऽन्यत्र निन्दितः॥

भावार्थ – जन्म राशि से ३,६,१,७, ११,१० वें स्थान में चन्द्रमा शुभ होते है, २,५,९ वें में शुक्ल पक्ष में शुभ है। ४,८,१२ वें में अशुभ होते है।

गुरू शुद्धि विचार –

वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः।

श्रेष्ठो गुरूः खषट्त्र्याद्ये पूजयान्यत्र निन्दितः॥

भावार्थ – बालक और कन्या की जन्म राशि से 2,5,9,7,11 वें स्थान में गुरू शुभ होते है तथा 10,6,3,1 इनमें शान्ति जपदान से शुद्ध होते है। 4,8,12 में अशुभ है।

विशेष –

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरूः।

अशुभोऽपि शुभो ज्ञेयो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन् ।।

भावार्थ - अपने उच्च में अपनी राशि में मित्र की राशि में अपने नवमांश में गुरू रहे तो अशुभ भी शुभ होता है और नीच तथा शत्रु की राशि में रहे तो शुभ भी अशुभ होता है। यहाँ गुरू उपलक्षण है सभी ग्रह (रवि चन्द्रादि) अपने उच्चादि स्थान में रहने पर अनिष्ट स्थान में भी शुभ होते है।

वर वरण तिलक मुहूर्त्त -

कन्याभ्राताऽथवा विप्रो वस्रालंकारणादिना।

ध्रुवपूर्वानिलैः कुर्याद्वरवृत्तिं शुभे दिने।।

भावार्थ - कन्या के सहोदर भाई अथवा कोई ब्राह्मण वस्त्र अलंकरण आदि से शुभ दिन में ध्रुव संज्ञक तीनों पूर्वा और कृत्तिका नक्षत्र में वर को तिलक करना चाहिये।

अथ कन्यावरण –

विवाहोक्तैश्च नक्षत्रैः शुभे लग्ने शुभे दिने।

वस्रालंकरणाद्यैश्च कन्यकावरणं शुभम् ।।

भावार्थ - विवाहोक्त नक्षत्र, शुभ दिन, शुभ लग्न में वस्र अलंकार, फल, पुष्प आदि से कन्या वरण करना शुभ होता है।

वर - कन्या की कुण्डली विचार –

(लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे वा कुजाष्टमे)

लग्ने व्यये चतुर्थे च सप्तमे वाष्टमे कुजे।

भर्तारं नाशयेद्भर्या भर्ता भार्या विनाशयेत् ।।

अर्थात् वर – कन्या की कुण्डली में लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम एवं द्वादश भाव में मंगल हो तो वह मांगलिक होती है।

नीचे दी गई स्थितियों में कुज दोष माना जाता है –

1. जन्मकुण्डली में 1,4,7,8 तथा 12 वें भाव में मंगल स्थित हो ।
2. चन्द्र कुण्डली में 1,4,7,8,12 वें भाव में मंगल या अन्य क्रूर ग्रह उपस्थित हो।
3. शुक्र से भी कोई मंगल या कोई अन्य क्रूर ग्रह 1,4,7,8 या 12 वें हो तो कुज दोष माना गया है।
4. कुज दोष बनाने वाला ग्रह यदि अस्त, नीचस्थ या शत्रुराशिस्थ हो तो कुज दोष का फल अधिक माना गया है।
5. कुज दोष दाम्पत्य जीवन के लिये अच्छा नही माना गया है।
6. कहीं – कहीं द्वितीय भावस्थ मंगल या अन्या क्रूर ग्रह को भी कुज दोष में माना गया है।

मांगलिक योग का वैवाहिक जीवन पर प्रभाव –

1. पति या पत्नी के स्वास्थ्य की हानि।
2. वैवाहिक सुख में कमी अथवा विवाह में विलम्ब।
3. किसी एक के आयु की हानि।
4. शैय्या सुख में कमी।
5. कन्या को वैधव्य होगा।
6. यदि पापग्रह अष्टम तथा द्वादश में हो तो विधवा हो जाने की स्थिति।
7. यदि पापग्रह लग्न में हो तो विधवा होने की स्थिति।
8. यदि पापग्रह लग्न में तथा आठवें हो तो विधवा होने की स्थिति।
9. यदि पापग्रह छठें, आठवें या 12 वें हो तो विधवा होने की स्थिति।

विशेष -

वैधव्य के लिये या वैवाहिक जीवन को नष्ट करने वाला ग्रह केवल मंगल ही नही है, अपितु अन्य क्रूर ग्रह भी मंगल की तरह वैवाहिक सुख में कमी कर सकते है।

कुजदोषवती देयात्कुजदोषवते किल।
नास्ति न चानिष्टं दम्पत्योः सुखवर्धनम् ।।

भावार्थ – मांगलिक कन्या मंगल दोष वाले वर को देने से मंगल का दोष नहीं लगता ओर कोई अनिष्ट भी नहीं होता। बल्कि वर – वधु का दाम्पत्य सुख बढ़ता है।

शनिभौमोऽथवा कश्चित्पापो वा तादृशो भवेत्।
तेष्वेव भवनेष्वेव भौमदोषविनाशकृत् ।।

भावार्थ – वर – कन्या की जन्मकुण्डली में अनिष्ट स्थान स्थित शनि, मंगल अथवा उसी के जोड़ – तोड़ का अन्य कोई पापग्रह हो और उसका जवाब देने वाला लड़की अथवा लड़के की जन्म कुण्डली में उन्हीं स्थानों में शनि, मंगल अथवा तत्समान कोई पापग्रह हो तो मंगल का दोष नहीं लगता है।

परिहार –

भौम तुल्यो यदा भौमो पापो वा तादृशो भवेत्।
वरवध्वोर्मिथस्तत्र भौम दोषो न विद्यते।।

भावार्थ – १,४,७,८,१२ इन स्थानों में मंगल वर के जन्म पत्री में हो तो वर मांगलिक स्त्रीनाशक तथा कन्या के जन्म पत्र में उक्त स्थानों में मंगल हो तो कन्या मंगला कहलाती है। इसका यह परिहार है कि यदि उक्त स्थान में वर की कुण्डली में मंगल हो तथा कन्या की कुण्डली में मंगल हो तथा

कन्या की कुण्डली में भी उन्हीं स्थानों में से किसी में मंगल हो तो परस्पर दोषों का नाश करके विवाह सम्बन्ध शुभप्रद हो जाता है। यदि एक जन्मकुण्डली में मंगल हो और दूसरे के जन्मकुण्डली में उक्त स्थानों में मंगल न हो कोई अन्य पापग्रह भी हो तथापि अनिष्ट भौम का दोष नहीं होता है।

बोध प्रश्न

1. विवाह का प्रथम सोपान है –

क. तिलक ख. वरण ग. जयमाला घ. कोई नहीं

2. ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र है -

क. कृत्तिका एवं तीनों पूर्वा ख. तीनों उत्तरा एवं रोहिणी ग. भरणी, मृगशिरा घ. उत्तराफाल्गुनी

3. विश्व का अर्थ है –

क. स्वाती ख. श्रवण ग. उत्तराषाढ़ा घ. अनुराधा

4. रवि शुद्धि होता है –

क. जन्म राशि से 3,6,10,11

ख. जन्म राशि से 2,5,7,11

ग. जन्म राशि से 5,7,9, 12

घ. कोई नहीं

5. बालक और कन्या की जन्म राशि से किन किन स्थानों में गुरू शुभ होता है –

क. 1,4,7,10 ख. 2,5,9,7,11 ग. 3,6,9,12 घ. कोई नहीं

मतान्तर –

सप्तमे च यदा सौरिर्लग्ने वापि चतुर्थके।

अष्टमे द्वादशे चैव तदा भौमो न दोषकृत्॥

भावार्थ – यदि सप्तम, लग्न, चतुर्थ, अष्टम द्वादश इन भावों में शनैश्चर हो तो परस्पर भौम का दोष नहीं होता है।

उक्तस्थानेषु चन्द्राच्च गणयेत् पाप खेचरान्।

पापाधिक्ये वरे श्रेष्ठं विवाहं प्रवदेत् बुध:॥

भावार्थ - जैसे लग्न से ४,७,८,१२ वें मंगल या अन्य पापग्रह अनिष्ट होते है। इसीलिए वर की कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से उक्त स्थान में पापग्रह की संख्या गणना करे एवं कन्या की कुण्डली में भी लग्न और चन्द्रमा से उक्त स्थानों में पापग्रह की संख्या गणना करे, गणना करने पर यदि कन्या से वर की पाप संख्या अधिक हो तो विवाह सम्बन्ध श्रेष्ठ समझना चाहिए।

मेलापक विचार (अष्टकूट) –

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ।

गणमैत्रं भकूटं च नाड़ी चैते गुणाधिका ।।

भावार्थ – १ वर्ण, २ वश्य, ३ तारा, ४ योनि , ५ ग्रहमैत्री , ६ गण ७ राशिकुट या भकुट ८ नाड़ी ये आठ प्रकार के कूट है। इनमें क्रम से एक – एक गुण अधिक होते है।

यथा – वर्ण में १, वश्य में २, तारा में ३ , योनि में ४, ग्रहमैत्री में ५ , गणमैत्री में ६ , भकुट में ७ , नाड़ी में ८ गुण होते है। इन सभी का सम्पूर्ण योग ३६ होता है, जो अष्टकूट मिलान का सर्वाधिक अंक माना जाता है।

वर्णज्ञान –

कर्कमीनालयो विप्रा: सिंहो मेषो धनुर्नृपा: ।

कन्या वृष मृगा वैश्या: शूद्रा युग्म तुला घटा ।।

भावार्थ - कर्क, मीन, वृश्चिक ये ब्राह्मण वर्ण है। मेष , सिंह , धनु ये क्षत्रीय, कन्या, वृष मकर ये वैश्य और मिथुन, तुला और कुम्भ ये शूद्र वर्ण है।

वर्ण गुण संख्या –

एको गुण: सदृग्वर्णे तथा वर्गोत्तमे वरे ।

हीनवर्णे वरे शून्यं केप्पाहु: सदृशे दलम् ।।

भावार्थ – वर और कन्या एक वर्ण के हो अथवा कन्या से वर का वर्ण उत्तम हो तो एक गुण, हीन वर्ण वर हो तो शून्य गुण होता है। कुछ आचार्य समान वर्ण में आधा गुण होता है ऐसा मानते है।

वर्णगुण चक्र

	मीन	**मेष**	**वृष**	**मिथुन**
राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला
	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ
वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र

वर वर्ण

	ब्राह्मण	**क्षत्रिय**	**वैश्य**	**शूद्र**
ब्राह्मण	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

कन्या वर्ण

इस चक्र से परस्पर कार्य क्षमता का विचार किया जाता है।

वश्य ज्ञान -

हित्वा मृगेन्द्रं नरराशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजाश्च भक्ष्याः ।

सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनालि ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ।।

भावार्थ – सिंह राशि को छोड़कर सब राशि नर राशि के वश्य होती है और जलचर राशि भक्ष्य है और वृश्चिक को छोड़कर सभी राशि सिंह के वश में है और राशियों के वश्य को व्यवहार से समझना चाहिए।

वश्य जानने के लिए द्विपद आदि संज्ञा –

वृषसिंहधनुर्मेषा मकरार्धं चतुष्पदाः ।

मृगोत्तरार्धे कुम्भश्च मीनश्चैते जलेचराः ।।

नरा मिथुनकन्ये च धनुः पूर्वार्धकं तुला ।

कीटस्तु कर्कटः प्रोक्तो वृश्चिकश्च सरीरसृप ।।

भावार्थ – मेष, वृष, सिंह, धनु के उत्तरार्ध और मकर के पूर्वार्ध ये चतुष्पद है। मकर के उत्तरार्ध कुम्भ मीन ये जलचर है। मिथुन, तुला, कन्या, धनु के पूर्वार्ध ये द्विपद है। कर्क, कीट और वृश्चिक सरीसृप है।

वश्यगुणबोधक चक्र –

वर राशि

कन्या राशि

	चतुष्पद	**द्विपद**	**जलचर**	**वनचर**	**कीट**
चतुष्पद	२	१	१	१/२	०
द्विपद	१	२	१/२	०	०
जलचर	१	१/२	२	१	२
वनचर	०	०	१	२	०
कीट	१	१	१	०	२

सख्यं वैरं च भक्ष्यं च वश्यमाहुस्त्रिधा बुधाः ।

वैरभक्ष्ये गुणाभावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम् ।।

भावार्थ - सख्य (मैत्री) वैर, भक्ष्य, ये तीन प्रकार के वश्यकुट होते है। यदि वर कन्या की राशि में परस्पर वैर भक्ष्य हो तो शून्य गुण और दोनों में मैत्री हो तो २ गुण, वैश्य वैर हो तो १ गुण, वश्य भक्ष्य हो तो आधा गुण होता है।

ताराकूट विचार –

कन्यर्क्षाद्वरभं यावत् कन्याभं वरभादपि।

गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम्॥

भावार्थ – कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक और वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गणना कर पृथक् ९ का भाग देने से ७,५,३ बचे तो अशुभ अर्थात् १,२,४,६,८,९ बचे तो शुभ है।

तारागुण विभाग –

एकृतश्चेच्छुभा तारा परतश्चाशुभा तदा।

सार्द्धश्चैको गुणो ग्राह्यस्ताराशुद्धया मिथस्त्रयः॥

भावार्थ - एक से शुभ तारा दूसरे से अशुभ हो तो डेढ़ गुण, दोनों से यदि शुभ तारा हो तो ३ गुण। यदि दोनों से अशुभ तारा हो तो ० गुण समझना चाहिए।

तारा गुण बोधक चक्र

वर तारा

कन्या तारा

तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१.५	३	१.५	३	१.५	३	३
२	३	३	१.५	३	१.५	३	१.५	३	३
३	१.५	१.५	०	१.५	०	१.५	०	१.५	१.५
४	३	३	१.५	३	१.५	३	१.५	३	३
५	१.५	१.५	०	१.५	०	१.५	०	१.५	१.५
६	३	३	१.५	३	१.५	३	१.५	३	३
७	१.५	१.५	०	१.५	०	१.५	०	१.५	१.५
८	३	३	१.५	३	१.५	३	१.५	३	३
९	३	३	१.५	३	१.५	३	१.५	३	३

योनिकूट विचार –

अश्विन्यम्बुपयोर्हियो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः।
सिंहोवस्वजपाद्भयोः समुदितो याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः ।।
मेषो देवपुरोहितानलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः।
स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैवनकुश्चान्द्राब्जयोन्यो रहिः ।।
ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरंग उदितो मूलार्द्रयोःश्वा तथा।
मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोन्दुरूः ।।
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुध्यर्क्ष यो।
र्योनिः पादाभयोः परस्परमहावैरं भयोन्योस्त्यजेत् ।।

भावार्थ - अश्विनी- शतभिषा की **अश्व योनि,** स्वाती - हस्त की **महिष,** धनिष्ठा - पूर्वाभाद्रपदा **की सिंह,** भरणी – रेवती की **हस्ती ,** पुष्य – कृत्तिका की **मेष ,** श्रवण – पूर्वाषाढ़ा **की वानर,** उत्तराषाढ़ा – अभिजित की **नकुल,** मृगशिरा – पूर्वाफाल्गुनी की **सर्प,** ज्येष्ठा – अनुराधा **की हिरण ,** मूल आर्द्रा की **श्वान,** पुनर्वसु – आश्लेषा की **मार्जार ,** मघा – पूर्वाफाल्गुनी की **मूषक,** विशाखा – चित्रा की **व्याघ्र,** उत्तराफाल्गुनी – उत्तराभाद्रपद की **गौ योनि है** । श्लोक के एक – एक चरण में जो दो दो योनि पठित है उनमें परस्पर महावैर है इस लिए यह त्याज्य है।

योनि गुण विचार –

महावैरे च वैरे च समे चैव यथाक्रमम्।
मैत्रे चैवातिमैत्रे च खैकद्वित्रिचतुर्गुण ।।

भावार्थ – परस्पर महावैर में ०, वैर में १, सम में २ मैत्री में ३, अतिमैत्री में ४ , ग्रहण करना चाहिये।

योनि गुण बोधक चक्र –

वर

योनि	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	३	०	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	१	३	२	२	०
मेष	३	३	४	२	२	३	३	३	३	१	३	०	२	१
सर्प	२	२	२	४	२	१	१	२	२	२	२	१	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	२	२	२	१	०	२	२	१
मा	३	३	३	१	१	४	०	३	३	२	३	२	२	१

र्जार														
मूषक	३	३	३	१	२	०	४	३	३	२	३	२	१	२
गौ	३	३	३	२	२	३	३	४	३	०	३	२	२	१
महिष	०	३	३	२	२	३	३	३	४	१	२	२	२	१
व्याघ्र	१	१	१	२	१	२	२	०	१	४	१	२	२	१
मृग	३	३	३	२	०	३	२	३	३	१	४	२	२	१
वानर	२	२	०	१	२	२	२	२	२	२	२	४	२	१
नकुल	२	२	२	०	२	२	१	२	२	२	२	२	४	२
सिंह	१	०	१	२	१	२	२	१	१	१	१	१	२	४

कन्या

ग्रहमैत्री विचार –

रवे: समो ज्ञो मित्राणि चन्द्रारेज्या: परावरी।

इन्दोर्नशत्रवो शत्रवो मित्रे रविज्ञावितरे समा: ।।

समौ कुजस्य शुक्रार्की बुधोऽरि: सुहृद: परे।

ज्ञस्य चन्द्रो रिपुर्मित्रे शुक्रर्कावितरे समा: ।।

आरार्कज्ञा गुरौ र्मित्राण्यार्किर्मध्य: परावरी।

भृगो: समावीज्यकुजौ मित्रे ज्ञार्की परौ रिपू ।।

शनेर्गुरू: समो मित्रे शुक्रज्ञौ शत्रव: परे।

कश्यपोक्त्याऽनया विज्ञो ग्रहमैत्री विचारयेत् ।।

भावार्थ –

1. **सूर्य** के बुध **सम,** चन्द्र, भौम, गुरू **मित्र** शुक्र एवं शनि **शत्रु** है।
2. **चन्द्रमा** का कोई **शत्रु नही होता।** सूर्य, बुध **मित्र** मंगल, वृहस्पति, शुक्र एवं शनि **सम** है
3. **मंगल** के शुक्र, शनि **सम, सूर्य,** चन्द्र ,गुरू **मित्र** एवं बुध **शत्रु है।**
4. **बुध** के चन्द्रमा **शत्रु**, सूर्य, शुक्र **मित्र** शुक्र एवं मंगल, वृहस्पति एवं शनि **सम** है।
5. **वृहस्पति** के सूर्य, मंगल एवं चन्द्रमा **मित्र,** शनि **सम** बुध एवं शुक्र **शत्रु** है।
6. **शुक्र** के मंगल, वृहस्पति **सम,** बुध एवं शनि **मित्र** सूर्य तथा चन्द्र **शत्रु** है।

7. **शनि** के गुरू **सम,** बुध – शुक्र **मित्र** एवं सूर्य, चन्द्र, मंगल **शत्रु है।**

इस प्रकार ग्रहमैत्री का विचार करना चाहिये।

ग्रहमैत्री गुण विभाग –

ग्रहमैत्रं सप्तविधं गुणाः पञ्च प्रकीर्तिताः।
तत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुणपञ्चकम्।।
चत्वारः सममित्रत्वे द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः।
मित्रवैरं गुणश्चैकः समवैरे गुणार्द्धकम्।।
परस्परं खेटवैरे गुणशून्यं विनिर्दिशेत्।
असद्भे सममित्रादौ व्येकाग्राह्या यथोदिताः।।

भावार्थ – ग्रह मैत्री कूट सात प्रकार के होते है और इसके 5 गुण है। इनमें यदि वर – कन्या की राशि में एकाधिपत्य या मैत्री हो तो ५ गुण, सम या मित्रता हो तो ४ गुण दोनों समता हो तो ३ गुण, मित्र – शत्रुत्व हो तो १ गुण, सम शत्रुता हो तो अर्ध १/२ गुण और परस्पर शत्रुता हो तो शून्य गुण होता है। मित्रारि गुण होने पर भी नीचादि में हो तो प्राप्त गुण में एक अल्प करके ग्रहण करना चाहिए।

ग्रहमैत्री गुणबोधक चक्रम् –

वर

कन्या

ग्रहाः	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
सूर्य	५	५	५	४	५	०	०
चन्द्र	५	५	४	१	४	१/२	१/२
मंगल	५	४	५	१/२	५	३	१/२
बुध	४	१	१/२	५	१/२	५	४
वृहस्पति	५	४	५	१/२	५	१/२	३
शुक्र	०	१/२	३	५	१/२	५	५
शनि	०	१/२	१/२	४	३	५	५

गण कूट विचार –

रक्षोनरामरगणाः क्रमतो मघाहि
वास्विन्द्रमूलवरूण नलतक्षराधाः।
पूर्वोत्तरात्रय विधातृयमेशमानि
मैत्राद्वितीन्दुहरिपौष्णभरूल्लधुनि ॥

भावार्थ – मघा – आश्लेषा – धनिष्ठा - ज्येष्ठा – मूल शततारका (शतभिषा) कृत्तिका, चित्रा, विशाखा ये **राक्षस गण** है। तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी,भरणी, आर्द्रा ये **मनुष्य गण** है। अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती और लघुसंज्ञक हस्त, पुष्य, अभिजित ये **देवगण** है।

फल विचार –

स्वगणे परमा प्रीतिर्मध्यमा नरदेवयोः।
नरराक्षसयोर्मृत्युः कलहो देवरक्षसोः॥

भावार्थ – अपने गण में उत्तम प्रीति, देव- मनुष्य गण में मध्यम प्रीति होती है। मनुष्य – राक्षस गण में मृत्यु और देव – राक्षस गण में कलह होता है।

गणकूट गुण विभाग –

स्वगणे षडगुणा प्रोक्ता पञ्च देवमनुष्ययोः।
देवराक्षसयोश्चैकः शून्यं मनुजराक्षसोः॥

भावार्थ – स्वगण में ६ गुण , देव – मनुष्य में ५, देव – राक्षस में १, मनुष्य – राक्षस में शून्य ० गुण होता है।

गण मैत्री से एक – दूसरे की अभिरूचि का ज्ञान किया जाता है।

वर

कन्या

गण	देव	मनुष्य	राक्षस
देव	६	५	१
मनुष्य	६	६	०
राक्षस	१	०	६

गणादि दोष परिहार –

राशीशयोः सुहृदभावे मित्रत्वे वांशनाथयोः।

गणादिदौष्टयेऽप्युद्वाहः पुत्र पौत्रा प्रवर्धनः ।।

भावार्थ – राशीश में मैत्री हो अथवा अंश स्वामी में मैत्री हो तो गणादि दुष्ट रहने पर भी विवाह पुत्र – पौत्र को बढ़ाने वाला होता है।

राशि कूट विचार –

मृत्युः षट्काष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।

द्विर्द्वादशे दरिद्रत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ।।

भावार्थ – वर की राशि से कन्या की राशि तक और कन्या की राशि से वर की राशि तक गिनने से ६/८ हो तो दोनों की मृत्यु ९,५ हो तो सन्तान हानि , २/१२ हो तो दरिद्रता होती है।

दुष्टभकूट परिहार –

एकाधिपत्ये राशीशमैत्र्यां दुष्टभकूटके ।

नाडी नक्षत्रशुद्धिश्चेद्विवाहः शुभदस्तथा ।।

भावार्थ – वर और कन्या दोनों की राशि के स्वामी एक ही ग्रह हो अथवा दोनों राशिश में मैत्री हो और नाड़ी नक्षत्र शुद्ध रहे तो दुष्ट भकुट में भी विवाह शुभ होता है।

राशि कूट ज्ञान चक्र – वर

राशियॉं	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
मेष	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
वृष	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मिथुन	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
कर्क	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सिंह	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
कन्या	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तुला	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृश्चिक	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
धनु	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
मकर	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
कुम्भ	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मीन	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

कन्या

नाड़ीकूट विचार –

ज्येष्ठारौद्रार्यमाम्भ: पतिभयुगयुगं दास्रभं चैकनाड़ी ।

पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तक वसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या ।।

वाय्वाग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्यात् ।

दम्पत्योरेकनाडयां परिणयनमसन्मध्यनाडयां च मृत्यु: ।।

अर्थ - ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी , हस्त, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, अश्विनी ये आदि नाड़ी और पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद ये मध्य नाड़ी तथा स्वाती, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, रेवती ये अन्त्य नाड़ी है । वर – कन्या की एक नाड़ी में विवाह अशुभ है, मध्य नाड़ी में मृत्यु होती है अर्थात् भिन्न नाड़ी शुभ होता है ।

नाड़ी बोधक चक्रम् –

आदि	ज्येष्ठा	मूल	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	शतभिषा	पू0भा0	अश्विनी
मध्य	पुष्य	मृगशिरा	चित्रा	अनुराधा	भरणी	धनिष्ठा	पू0षा	पू0फा0	उ0भा0
अन्त्य	स्वाती	कृत्तिका	आश्लेषा	विशाखा	रोहिणी	मघा	उ0षा0	श्रवण	रेवती

नाड़ी गुण ज्ञान चक्र :-

वर	**नाड़ी**	**आदि**	**मध्य**	**अन्त्य**
	आदि	०	८	८
	मध्य	८	०	८
कन्या	**अन्त्य**	८	८	०

विशेष –

ब्राह्मणों के लिये नाड़ी दोष माना गया है, तथा क्षत्रियों के लिये वर्ण एवं राशिज वर्ण दोष, वैश्यों के लिये गण दोष और शूद्रों के लिए योनि दोष विशेष करके माना गया है ।

परिहार –

वर – कन्या की एक राशि हो और नक्षत्र भिन्न – भिन्न हो अथवा एक नक्षत्र और भिन्न – भिन्न राशि हो तो नाड़ी दोष और गणदोष नहीं होता है तथा एक नक्षत्र में चरण के भेद होने से शुभ होता है।

वर्गकूट विचार –

अवर्गो गरूडस्योक्तो मार्जारस्य कवर्गक: ।

सिंहस्यैवं चवर्गस्तु कुक्कुरस्य टवर्गक: ।।

सर्पस्त्रोक्तस्तवर्गस्तु पवर्गो मूषकस्य च ।

यवर्गस्तु गजस्योक्तो मेषस्य तु शवर्गक: ।।

भावार्थ – अवर्ग के स्वामी गरूड़, कवर्ग के मार्जार, चवर्ग के सिंह, टवर्ग के कुक्कुर, तवर्ग के सर्प, पवर्ग के मूषक, यवर्ग के हिरण शवर्ग के स्वामी मेष है।

अपने से पॉचवॉ वर्गेश शत्रु, चौथा मित्र, तृतीय उदासीन सम होते है। इस प्रकार तीन भेद है। एक वर्ग में अत्यन्त प्रीति, मित्र वर्ग में उत्तम प्रीति और उदासीन में थोड़ी प्रीति होती है। परस्पर शत्रु वर्ग में मृत्यु होती है।

वर्ग चक्र –

	वर्ग	**स्वामी**	**मित्र**	**सम**	**शत्रु**	**दिशा**	**स्वर**
अवर्ग	अ, ई, उ, ए ओ	गरूड़	श्वान	सिंह	सर्प	पूर्व	८
कवर्ग	क ख ग घ ड.	मार्जार	सर्प	श्वान	मूषक	अग्निकोण	५
चवर्ग	च छ ज झ ञ	सिंह	मूषक	सर्प	मृग	दक्षिण	६
टवर्ग	ट ठ ड ढ ण	श्वान	मृग	मूषक	मेष	नैऋत्य	४
तवर्ग	त थ द ध न	सर्प	मेष	मृग	गरूड़	पश्चिम	७
पवर्ग	प फ ब भ म	मूषक	गरूड़	मेष	मार्जार	वायव्य	१
यवर्ग	य र ल व	मृग	मार्जार	गरूड़	सिंह	उत्तर	३
शवर्ग	श ष स ह	मेष	सिंह	मार्जार	श्वान	ईशान	२

राशियों का तत्व ज्ञान –

राशियॉं	**राशि तत्व ज्ञान**
मेष, सिंह, धनु	अग्नि तत्व
वृष, कन्या, मकर	भूमि तत्व
मिथुन, तुला, कुम्भ	वायु तत्व
कर्क, वृश्चिक, मीन	जल तत्व

चर स्थिर द्विस्वभाव राशियॉं –

चर राशियॉं - १,४,७,१०

स्थिर राशियॉं – २,५,८,११

द्विस्वभाव राशियॉं – ३,६,९,१२

भद्रावास विचार –

मेष, वृषृ मिथुन, वृश्चिक के चन्द्र में भद्रा स्वर्ग में, कन्या तुला, धनु, मकर के चन्द्र में भद्रा पाताल की, तथा कुम्भ, मीन कर्क, सिंह के चन्द्र में भद्रा मृत्युलोक की मानी जाती है।

भद्रा परिहार : - शुक्ल पक्ष की ४,११ तिथि कृष्ण पक्ष में ३,१० तिथि वाली भद्रा दिन में शुभ होती है। शुक्ल पक्ष की ८,१५ तथा कृष्ण पक्ष की ७,१४ तिथि में रात्रि में भद्रा शुभ है तथा भद्रा सोमवार व्यतीपात , वैधृति, जन्म नक्षत्र तथा ५ वीं तारा ये मध्याह्न दोपहर के पीछे शुभ है।

भद्रा का शुभोपयोग - न्यायालय कार्य, विशेष व्यक्ति के सम्पर्क, शत्रु विरोधी, काय चिकित्सा एवं डॉ से सम्पर्क, स्त्री प्रसंग, किसी को मारना, बॉंधना विष देना , अग्नि लगाना, अस्त्र फेंकना, उच्चाटन आदि तथा घोड़ा, भैंस – उॅंट आदि का क्रय – विक्रय भद्रा में शुभ होता है।

वर – कन्या की वर्ष शुद्धि – कन्या के जन्म समय से सम वर्षों में और वर के जन्म समय से विषम वर्षों में होने वाला विवाह उन दोनों के प्रेम और प्रसन्नता को बढ़ाने वाला होता है। इससे विपरीत कन्या के विषम और वर के सम वर्ष में विवाह वर – कन्या दोनों के लिए घातक होता है।

3.4 सारांश

विवाह मानव जीवन का अभिन्न अंग है। इस जगत में सुखीपूर्वक गृहस्थ जीवन यापन करने के लिये मनुष्य विवाह के बन्धन में बंधता है, जिसमें वह अपने जीवन को अपनी भार्या के साथ विशेष प्रकार से निर्वहन करता है। विवाह के पूर्व वर – कन्या का वरण आदि कार्य होता है। वर एवं कन्या का वरण विवाह की प्रथम कड़ी माना जाता है। वर – कन्या वरण के अन्तर्गत योनि गुण ज्ञान चक्र से एक दूसरे का विवेक संतुलन विचार किया जाता है। ठीक इसी प्रकार ग्रहमैत्री चक्र से परस्पर प्राकृतिक स्वभाव का विचार करते है इस तरह ग्रहमैत्री चक्र से परस्पर प्राकृतिक स्वभाव का विचार करते है इस तरह गणमैत्री से एक दूसरे की अभिरूचि का ज्ञान किया जाता है इसी प्रकार अष्टकूट मिलान के सम्पूर्ण योग ३६ होते है तथा सभी कूटों से वर – कन्या वरण के पूर्व इन सबका मिलान कर लेने से और साथ ही वर – कन्या वरण के मुहूर्त्त में यह संस्कार करने से भावी दम्पत्ति के जीवन में कोई भी बाधा नहीं आयेगी एवं पारिवारिक जीवन सूख पूर्वक व्यतीत होगा।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

वर – लड़का

कन्या – लड़की

वरण – छेका, आधुनिक भाषा में जिसे इंगेजमेन्ट कहते है।

कुज – मंगल

सौरि – शनि

वर्ग – अवर्गादि

अग्नि तत्व राशियॉं – मेष, सिंह, धनु

भूमि तत्व राशियॉं – वृष, कन्या, मकर

वायु तत्व राशियॉ – मिथुन, तुला, कुम्भ

जल तत्व राशियॉ – कर्क, वृश्चिक, मीन

चर राशियॉ – मेष, कर्क , तुला , मकर

स्थिर राशियॉ – वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ

द्विस्वभाव राशियॉ – मिथुन, कन्या, धनु, मीन

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ख
3. ग
4. क
5. ख

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. भारतीय ज्योतिष
4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.वर – कन्या वरण पर टिप्पणी लिखिए।

2. अष्टकूट विषय से सम्बन्धित निबन्ध लिखिए।

इकाई – 4 त्रिबल शुद्धि

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई 'त्रिबल शुद्धि ' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। भारतीय सनातन परम्परा में 'विवाह' मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। विवाह प्रकरण में त्रिबल शुद्धि क्या है इसका अध्ययन आप प्रस्तुत इकाई में करने जा रहे है।

विवाह में शुद्धि विचारार्थ बलाबल का विचार किया जाता है। बलाबल में त्रिबल शुद्धि का विचार ही त्रिबलशुद्धि के नाम से जाना जाता है।

इस इकाई के पूर्व आपने वर एवं कन्या वरण का अध्ययन कर लिया है, आइये इस इकाई में त्रिबल शुद्धि का अध्ययन करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ त्रिबल क्या है।
- ❖ त्रिबल शुद्धि का विचार किस प्रकार करते है।
- ❖ विवाह में त्रिबल शुद्धि का क्या प्रयोजन है ।
- ❖ त्रिबल शुद्धि में कौन – कौन सा विचार होता है।
- ❖ त्रिबल शुद्धि से क्या होता है।

4.3 त्रिबल शुद्धि

विवाह मुहूर्त के लिए मुहूर्त शास्त्रों में शुभ नक्षत्रों और तिथियों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद,रोहिणी, मघा, मृगशिरा, मूल, हस्त, अनुराधा, स्वाति और रेवती नक्षत्र में, 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13, 15 तिथि तथा शुभ वार में तथा मिथुन, मेष, वृष, मकर, कुंभ और वृश्चिक के सूर्य में विवाह शुभ होते हैं। मिथुन का सूर्य होने पर आषाढ़ के तृतीयांश में, मकर का सूर्य होने पर चंद्र पौष माह में, वृश्चिक का सूर्य होने पर कार्तिक में और मेष का सूर्य होने पर चंद्र चैत्र में भी विवाह शुभ होते हैं। जन्म लग्न से अथवा जन्म राशि से अष्टम लग्न तथा अष्टम राशि में विवाह शुभ नहीं होते हैं। विवाह लग्न से द्वितीय स्थान पर वक्री पाप ग्रह तथा द्वादश भाव में मार्गी पाप ग्रह हो तो कर्तरी दोष होता है, जो विवाह के लिए निषिद्ध है। इन शास्त्रीय निर्देशों का सभी पालन करते हैं, लेकिन विवाह मुहूर्त में वर और वधु की त्रिबल शुद्धि का विचार करके ही दिन एवं लग्न निश्चित किया जाता है। कहा भी गया है —

स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम्। तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण निश्चितम् ।।

अत: स्त्री को गुरु एवं चंद्रबल तथा पुरुष को सूर्य एवं चंद्रबल का विचार करके ही विवाह संपन्न कराना चाहिए। सूर्य, चंद्र एवं गुरु के प्राय: जन्मराशि से चतुर्थ, अष्टम एवं द्वादश होने पर विवाह श्रेष्ठ नहीं माना जाता। सूर्य जन्मराशि में द्वितीय, पंचम, सप्तम एवं नवम राशि में होने पर पूजा विधान से शुभफल प्रदाता होता है। गुरु द्वितीय, पंचम, सप्तम, नवम एवं एकादश शुभ होता है तथा जन्म का तृतीय, षष्ठ व दशम पूजा से शुभ हो जाता है।

विवाह के बाद गृहस्थ जीवन के संचालन के लिए तीन बल जरूरी हैं— देह, धन और बुद्धि बल। देह तथा धन बल का संबंध पुरुष से होता है, लेकिन इन बलों को बुद्धि ही नियंत्रित करती है। बुद्धि बल का स्थान सर्वोपरि है, क्योंकि इसके संवर्धन में गुरु की भूमिका खास होती है। यदि गृहलक्ष्मी का बुद्धि बल श्रेष्ठ है तो गृहस्थी सुखद होती है, इसलिए कन्या के गुरु बल पर विचार किया जाता है। चंद्रमा मन का स्वामी है और पति-पत्नी की मन:स्थिति श्रेष्ठ हो तो सुख मिलता है, इसीलिए दोनों का चंद्र बल देखा जाता है। सूर्य को नवग्रहों का बल माना गया है। सूर्य एक माह में राशि परिवर्तन करता है, चंद्रमा 2.25 दिन में, लेकिन गुरु एक वर्ष तक एक ही राशि में रहता है। यदि कन्या में गुरु चतुर्थ, अष्टम या द्वादश हो जाता है तो विवाह में एक वर्ष का व्यवधान आ जाता है।

चंद्र एवं सूर्य तो कुछ दिनों या महीने में राशि परिवर्तन के साथ शुद्ध हो जाते हैं, लेकिन गुरु का काल लंबा होता है। सूर्य, चंद्र एवं गुरु के लिए ज्योतिषशास्त्र के मुहूर्त ग्रंथों में कई ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनमें इनकी विशेष स्थिति में यह दोष नहीं लगता। गुरु-कन्या की जन्मराशि से गुरु चतुर्थ, अष्टम तथा द्वादश स्थान पर हो और यदि अपनी उच्च राशि कर्क में, अपने मित्र के घर मेष तथा वृश्चिक राशि में, किसी भी राशि में होकर धनु या मीन के नवमांश में, वर्गोत्तम नवमांश में, जिस राशि में बैठा हो उसी के नवमांश में अथवा अपने उच्च कर्क राशि के नवमांश में हो तो शुभ फल देता है।

सिंह राशि भी गुरु की मित्र राशि है, लेकिन सिंहस्थ गुरु वर्जित होने से मित्र राशि में गणना नहीं की गई है। भारत की जलवायु में प्राय: 12 वर्ष से 14 वर्ष के बीच कन्या रजस्वला होती है। अत: बारह वर्ष के बाद या रजस्वला होने के बाद गुरु के कारण विवाह मुहूर्त प्रभावित नहीं होता है।

त्रिबल शुद्धि विचार में गुरू कन्या की जन्म राशि से १,८, व १२ वें भाव में गोचर कर रहा हो तो, इसे शुभ नहीं माना जाता है। गुरू कन्या के जन्म राशि से ३,६ वें राशियों में हो तो कन्या के लिए इसे हितकारी नहीं समझा जाता है तथा ४,१० वें राशि में हो तो कन्या को विवाह के पश्चात् दु:ख प्राप्त होने की संभावनाऍं बनती है। गुरू के अतिरिक्त सूर्य व चन्द्र का भी गोचर अवश्य देखा जाता है। इन तीनों ग्रहों (सूर्य, चन्द्र एवं गुरू) का गोचर में शुभ होना '**त्रिबल शुद्धि**' के नाम से जाना जाता है।

चन्द्र बल - चन्द्रमा का गोचर चौथे, आठवें भाव के अतिरिक्त अन्य भावों में होने पर चन्द्र को शुभ समझा जाता है। चन्द्र जब पक्ष बली, स्वराशि, उच्चगत, मित्र क्षेत्रिय होने पर उसे शुभ समझा जाता है, अर्थात् इस स्थिति में चन्द्र बल का विचार नहीं किया जाता हैं।

त्रिबल शुद्धि विचार -

वर व कन्या की जन्म राशि से अथवा दोनों की नाम राशि से सूर्य, चन्द्रमा व गुरू का गोचर देखने का नाम त्रिबल शुद्धि है। वर के लिए सूर्य, चन्द्रमा व गोचर देखने का नाम त्रिबल शुद्धि है। वर के लिए सूर्य व चन्द्रमा का गोचर तथा कन्या के लिए गुरू व चन्द्रमा का गोचर देखा जाता है।

सूर्य ३,६,१०,११ राशियों में जन्म राशि से रहने पर श्रेष्ठ है। ४,८,१२ भावों में त्याज्य है। शेष भावों में १,२,५,७,९ सूर्य पूज्य होता है। अर्थात् पूजा का विवाह बनता बनता है। इनमें भी १,७ स्थानगत सूर्य को विशेष पूज्य समझना चाहिए।

चन्द्रमा ४,८,१२ राशियों को छोड़कर वर व कन्या दोनों के लिए ४,८ गत चन्द्रमा को ही छोड़कर अन्यत्र शुभ है।

वृहस्पति ४,८,१२ राशियों को छोड़कर सर्वत्र ठीक है। यदि ४,८,१२ राशि गत होने पर उच्च स्वक्षेत्रादिगत भी हो तो भी मध्यम है तथा गुरू – बल शुद्धि मान ली जाती है।

विवाह पटल के अनुसार गुरू के अस्त को छोड़कर व सिंह राशि के सिंह नवमांश में गुरू को छोड़कर प्राय: कन्या को गुरू शुद्धि सदा ही रहती है।

मुख्यत: चन्द्रबल की सावधानी से कन्या के विषय में परीक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार विवाह मुहूर्त्त के दिनों में से जिस दिन त्रिबल शुद्धि बन जाए, उसी दिन विवाह निश्चय करके बता देना चाहिए।

शुक्र व गुरू का बाल्यवृद्धत्व -

पुर: पश्चाद् भृगोबाल्यं त्रिदशाहं च वार्द्धकम् ।
पक्ष पञ्चदिनं ते द्वे गुरो: पक्षमुदाहृते ।।
ते दशाहं द्वयो: प्रोक्ते कैश्चित्सप्तदिनं परै: ।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्द्धाहं च त्र्यहं विधो: ।।

शुक्र पूर्व दिशा में उदित होने के बाद तीन दिन तक बाल्यावस्था में रहता है। इस अवधि में शुक्र अपने पूर्ण रूप से फल देने में असमर्थ होता है। इसी प्रकार जब वह पश्चिम दिशा में होता है १० दिन तक बाल्य काल की अवस्था में होता है। शुक्र जब पूर्व दिशा में अस्त होता है तो अस्त होने से पहले १५ दिन तक फल देने में असमर्थ होता है व पश्चिम में अस्त होने से ५ दिन पूर्व तक वृद्धावस्था में रहता है। इन सभी समयों में शुक्र की शुभता प्राप्त नहीं हो पाती। गुरू किसी भी दिशा में अस्त या

उदित हो तो दोनों ही परिस्थितियों में १५-१५ दिनों के लिए बाल्यकाल में वृद्धावस्था में होते है। उपरोक्त दोनों ही योगों में विवाह कार्य सम्पन्न करने का कार्य नहीं किया जाता है।

चन्द्र का शुभाशुभ विचार – चन्द्र को अमावस्या से तीन दिन पहले व तीन दिन बाद तक बाल्य काल में होने के कारण इस समय को विवाह काल के लिए छोड़ दिया जाता है। ज्योतिष शास्त्र में यह मान्यता है कि शुक्र, गुरू व चन्द्र इनमें से कोई भी ग्रह बाल्यकाल में हो तो वह अपने पूर्ण फल देनें की स्थिति में न होने के कारण सुफल नहीं देते है और इस अवधि में विवाह कार्य करने पर इस कार्य के शुभता में कमी होती है।

त्रिज्येष्ठ विचार -

विवाह कार्य के लिए वर्जित समझा जाने वाला एक अन्य योग है। जिसे त्रिज्येष्ठ की नाम से जाना जाता है, इस योग के अनुसार सबसे बड़ी संतान का विवाह ज्येष्ठ मास में नहीं करना चाहिए। इस मास में उत्पन्न वर – कन्या का विवाह भी ज्येष्ठ मास में करना लाभप्रद नहीं होता है। इसके अतिरिक्त तीन ज्येष्ठ अर्थात् लड़का – लड़की भी ज्येष्ठ हो, साथ में ज्येष्ठ मास भी हो तो इस योग को विवाहार्थ शुभ नहीं माना जाता है। इन तीनों में कोई एक ज्येष्ठ हो तो दोष नहीं समझा जाता है।

गण्ड मुलोत्पन्न का विचार - मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाली कन्या अपने श्वसुर के लिए कष्टकारी समझी जाती है, तथा आश्लेषा नक्षत्र में जन्म लेने वाली कन्या को देवर के लिए अशुभ माना जाता है। इन सभी नक्षत्रों में जन्म लेने वाली कन्या का विवाह करने के पहले इन दोषों का निवारण किया जाता है।

वर – कन्या का कुण्डली मिलान के अन्य नियम -

१. वर के सप्तम स्थान का स्वामी जिस राशि में हो, वही राशि कन्या की हो तो दाम्पत्य जीवन सुखमय होता है।
२. यदि कन्या की राशि वर के सप्तमेश का उच्च स्थान हो, तो वैवाहिक जीवनमें प्रेम बढ़ता है सन्तान की प्राप्ति और सुख होता है।
३. वर के सप्तमेश का नीच स्थान यदि कन्या की राशि में हो तो दाम्पत्य जीवन सुखमय होता है।
४. वर का शुक्र जिस राशि में हो, वही राशि अगर कन्या की हो तो विवाह कल्याणकारी होता है।
५. वर की सप्तमांश राशि यदि कन्या की राशि हो, तो दाम्पत्य जीवन सुखकारक होता है।

सन्तान और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है।

६. वर का लग्नेश जिस राशि में हो, वही राशि कन्या की हो या वर के चन्द्रलग्न से सप्तम स्थान में, जो राशि हो वह राशि अगर कन्या की हो तो दाम्पत्य जीवन प्रेम और सुखपूर्वक व्यतीत होता है।
७. वर की जिस राशि में सप्तम स्थान पर जिन – जिन ग्रहों की दृष्टि हो वे ग्रह जिन - जिन राशियों में स्थित हो, उन राशियों में से कोई भी राशि कन्या की जन्म राशि हो तो दम्पत्ती में अपूर्व प्रेम रहता है।
८. जिन कन्याओं की जन्मराशि वृष, सिंह, कन्या या वृश्चिक होती है, उनको अल्प सन्तान होती है।
९. यदि पुरूष की जन्मकुण्डली की षष्ठ और अष्टम स्थान की राशि कन्या की जन्मराशि हो तो दम्पत्ती में परस्पर कलह होता है।
१०. वर – कन्या के जन्मलग्न और जन्मराशि के तत्वों का विचार करना चाहिए। यदि दोनों की राशियों के एक ही तत्व हो तो मित्रता होती है। अभिप्राय यह है कि कन्या की जन्मराशि या जन्म लग्न जलतत्ववाली हो और वर की जन्मराशि या जन्मलग्न जल या पृथ्वीतत्व वाली हो मित्रता और प्रेम समझना चाहिये।

आइए अब त्रिबल शुद्धि के अन्तर्गत ग्रहों के गोचर फल तथा सूर्य – शनि के वेध पर विचार करते हैं –

सूर्य छठें – बारहवें, दसवें चौथे, तीसरे - नवें, ग्यारहवें – पॉचवें स्थान में क्रम से शुभ और विद्ध होता हैं। अर्थात् मनुष्य की जन्मराशि से छठवीं राशि में सूर्य हो तो शुभ फल देने वाला होता है। यदि १२वीं राशि में शनि को छोड़कर कोई अन्य ग्रह स्थित हो तो सूर्य विद्ध हो जाता है, अर्थात् छठवें स्थान का सूर्य उस मनुष्य को शुभ फल न देकर अशुभ फल देने वाला हो जाता है। ऐसे ही १० वीं राशि पर सूर्य शुभ, यदि चौथी राशी पर सूर्य के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तो, विद्ध हो जाता है, एवं तीसरे शुभ – नवमस्थ ग्रह से विद्ध, ११ वें शुभ पंचमस्थ ग्रह से विद्ध हो जाता है।

मंगल, शनि और राहु ये ३ ग्रह छठीं राशि पर शुभ होते हैं, यदि नवीं राशि पर कोई ग्रह हो तो विद्ध हो जाता है। यहॉ शनि – सूर्य का वेध नहीं होता है, एवं ११ वें शुभ पंचमस्थ ग्रह से विद्ध तीसरे शुभ बारहवी राशि पर स्थित ग्रह से विद्ध हो जाता है।

चन्द्रमा जन्मराशि से १० वें शुभ – चतुर्थस्थ ग्रह से विद्ध , तीसरे शुभ नवमस्थ ग्रह से विद्ध, ११ वें शुभ आठवें ग्रह से विद्ध,जन्मराशि का शुभ पॉचवें स्थित से विद्ध , छठवें शुभ द्वादशस्थ ग्रह से विद्ध

, ६ वे शुभ द्वितीयस्थ ग्रह से विद्ध हो जाता है। यहाँ चन्द्र – बुध का वेध नहीं होता है।
बुध दूसरे शुभ पॉचवें से विद्ध, चौथे शुभ तीसरे से विद्ध, छठें शुभ नवमस्थ ग्रह से विद्ध , ८ वें शुभ जन्मराशि पर कोई ग्रह हो तो विद्ध, १० वें शुभ आठवें से विद्ध, ११ वें शुभ – १२ वें स्थित ग्रह से विद्ध हो जाता है।

बोध प्रश्न

१. निम्नलिखित में विवाह का नक्षत्र है –

क. अश्विनी ख. मृगशिरा ग. भरणी घ. कृत्तिका

२. कन्या विवाह हेतु देखना चाहिये –

क. गुरू एवं चन्द्रबल ख. सूर्य एवं चंद्रबल ग. मंगल एवं शुक्र बल घ. शुक्र एवं गुरू बल

३. त्रिबल शुद्धि विचार से सम्बन्धित है –

क. गुरू, मंगल,शनि ख. सूर्य, चन्द्र, गुरू ग. शुक्र, शनि, गुरू घ. सूर्य, बुध, शुक्र

४. शुक्र पूर्व दिशा में उदित होने के पश्चात् कितने दिनों तक बाल्यावस्था में रहता है –

क. ३ ख. ४ ग. ५ घ. ६

५. मनुष्य की जन्मराशि से छठीं राशि में यदि सूर्य हो तो –

क. शुभ फल देता है। ख. अशुभ फल देता है।

ग. शुभाशुभ फल देता है। घ. कोई नहीं

वृहस्पति - ५-४ , २-१२, १-१०, ५-३ , ११-३ स्थानों में क्रमशः शुभ और विद्ध होता है।
शुक्र – २-८, २-६, ३-९ , ४-१०, ५-१, ८-५, १-११, १२-६, ११-३ स्थानों में क्रम से शुभ और विद्ध होता है।
त्रिबल शुद्धि के अन्तर्गत विभिन्न योगों व ग्रहों के शुद्धि विचार –
क्रान्ति साम्य दोष विचार –

पंचास्याजौ गोमृगौ तौलिकुम्भौ कन्यामिनौ कर्क्यली चापयुग्मे।
तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्वोनिरूक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभ मंगलेषु ।।

सिंह - मेष, वृष – मकर, तुला – कुम्भ, कन्या - मीन, कर्क - वृश्चिक एवं धनु – मिथुन इन दो – दो राशियों के परस्पर सूर्य और चन्द्रमा के रहने पर क्रान्ति साम्य नाम का दोष लगता है। यह विवाह लग्न के अवसर पर हो तो अनिष्टकारक होता है।
क्रान्ति साम्य बोधक चक्र –

एकार्गल शुद्धि विचार – व्याघात, गण्ड, व्यतिपात, विष्कुम्भ, शुल, वैधृति, वज्र, परिघ तथा अतिखण्ड इन योगों में से कोई योग हो और उस समय सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से विषम नक्षत्र १।३।५।७।९।११।१३।१५।१७।१९।२१।२३।२५।२७ नक्षत्रों पर चन्द्रमा हो तो **खार्जुर नाम** का दोष होता है। यह विवाह में निन्दित होता है। इसी को एकार्गल भी कहते है। इसमें अभिजित् सहित गणना की जाती है।

उपग्रह शुद्धि विचार - जिस नक्षत्र पर सूर्य हो उससे ५।८।१०।१४।७।१९।१५।१८।२१।२२।२३।२४।२५ वें नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो उपग्रह नाम का दोष लगता है। यह कुरू और बाल्हिक देश में शुभ कार्यो में निषिद्ध माना गया है।

पात एवं उपग्रह शुद्धि - पात, उपग्रह एवं लता दोषों में दोषकारक नक्षत्र के जिस चरण में स्थित हो वही चरण अशुभ होता है, अर्थात् जिस नक्षत्रके जिस चरण में सूर्य हो उसी चरण पर दोष होता है । लता दोष में लतादोषकारक ग्रह जिस चरण पर हो उसी चरण में लता दोष होती है। अन्य चरणों में नहीं, खार्जुर योग में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

मुहूर्त्तचिन्तामणि में कथित ग्रहशुद्धि विचार –

गुरूशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात्।
रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः।

कन्याओं के जन्म से ६ वर्ष की अवस्था के बाद सम ८।१० वर्षो में गुरू की शुद्धि और वर की रवि शुद्धि से तथा दोनों की चन्द्र शुद्धि से विवाह होना श्रेयस्कर होता है।

गुरू शुद्धि –

वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः।
श्रेष्ठो गुरूः खषट्त्रयाद्ये पूजयान्यत्र निन्दितः।।

उपनयन आदि शुभ कार्यो में बालक की जन्मराशि से तथा विवाह में बालिका की जन्मराशि से

वृहस्पति ९,५,११,१२,७ स्थानों में हो तो शुभ है। १०,६,३,१ स्थानों में गुरू हों तो गुरू की पूजा करने पर शुभ तथा शेष जन्मराशि से ४,८,१२ स्थानों में गुरू के होने से अशुभ होता है।

रवि शुद्धि में जन्म राशि से ३,६,१०,११ वें शुभ, १,५,९ वें पूज्य तथा १,४,७,८,१२ वें सूर्य अशुभ होते हैं।

चन्द्र शुद्धि में जन्म राशि से ४,८,१२ वें चन्द्रमा अशुभ तथा शेष ९ राशियॉ शुभ समझनी चाहिए। विशेष रूप से आचार्य रामदैवज्ञ ने प्राचीन मतानुसार कन्याओं के लिए १० वर्ष के अन्दर ही विवाह में शुद्धि का उल्लेख किया है क्योंकि ११ वें वर्ष के बाद रजोदर्शन का समय हो जाता है –

रजो हि दृष्टं यदि कन्यकाया: कुलद्वयं दुर्गतिमेतितस्या: ।

किन्तु वर्तमान समय में सामाजिक प्रवृत्ति के परिवर्तन के कारण १८ वर्ष की अवस्था के पश्चात् लड़कियों के लिए तथा २१ वर्ष की अवस्था के पश्चात् लड़कों के लिए वैवाहिक समय का आरम्भ तथा तदनुसार क्रियाकलाप में अपनी तत्परता प्रारम्भ करने लगे हैं और ग्रहगोचर का अनुसरण भी कर लिया करते हैं, अत: वर – कन्या की चन्द्रशुद्धि अवश्य देखनी चाहिये।

त्रिबल पूजन विचार -

त्रिबल में वर-वधु की राशि के आधार पर तीनों ग्रहों को देखा जाता है. यदि यह तीनों ग्रह शुभ हैं तो विवाह करना शुभ होता है परंतु यदि किसी ग्रह की शांति की जानी हो तो उस ग्रह की पूजा एवं शांति के साथ उस ग्रह से संबंधित वस्तुओं का दान करने के पश्चात विवाह किया जा सकता है।

लाल पूजा - इन ग्रहों से संबंधित पूजा में सूर्य की पूजा को लाल पूजा कहा जाता है।

पीली पूजा - बृहस्पति की पूजा को पीली पूजा कहा जाता है. यदि विवाह में लाल एवं पीली पूजा करना अनिवार्य है तो उक्त पूजा को करने के बाद ही विवाह किया जाना चाहिए. यदि संभव हो तो लाल पूजा करने पर विवाह को कुछ समय के लिए टाल देना ही हितकर व शुभ होता है।

भावी वर एवं वधु की पत्रिका के आधार पर गोचर में ग्रहों की क्या स्थिति है उसे इस सारणी के आधार पर देखा जा सकता है -

त्रिबल पूजा	**शुद्ध**	**पूज्य**	**नेष्ट**
वर की राशि से सूर्य	3, 6, 10, 11	1, 2, 5, 7, 9	4, 8, 12
कन्या की राशि से गुरू	2, 5, 7, 9, 11	1, 3, 6, 10	4, 8, 12
दोनों की राशि से चंद्र	3, 6, 7, 10, 11	1, 2, 5, 9, 11	4, 8

संग्रह दोष –

चन्द्रे सूर्यादिसंयुक्ते दारिद्रयं मरणं शुभम्।
सौख्यं सापत्न्यवैराग्यं पापद्वययुते मृतिः ।।

विवाह समय में चन्द्रमा सूर्य के साथ हो तो शुभ, गुरू के साथ हो तो सौख्य, शुक्र के साथ हो तो सपत्नी और शनि के साथ्ज्ञ हो वैराग्य ऐसा फल देता है। यदि चन्द्रमा 2 पापग्रहों से युक्त हो तो मृत्युकारक होता हैं।

विशेष – शुभग्रहों के साथ चन्द्रमा के होने से शुभ, शुक्र के साथ होने से सौत एवं पापग्रहों के साथ होने से अशुभ फल समझना चाहिए। यदि चन्द्रमा अपनी राशि में अपने उच्च में, अपने मित्रगृह (सिंह, मिथुन, कन्या) में अर्थात् २,३,४,५,६ राशि में हो तो यह युति दोष नहीं होती है।

अष्टमलग्नदोष –

जन्मलग्नभयोर्मृत्युराशौ नेष्टः करग्रहः।
एकाधिपत्ये राशीशमैत्रे वा नैव दोषकृत्।।

जन्म लग्न अथवा जन्मराशि से ८ वें लग्न में विवाह अशुभ है किन्तु जन्मलग्न के स्वामी, जन्मराशि का स्वामी और विवाह लग्न का स्वामी एक ही ग्रह हों या दोनों राशीशों में मित्रता हो तो ८ वें लग्न का भी दोष नहीं होगा। यथा जन्म लग्न या जन्म राशि मेष और विवाह लग्न वृश्चिक होने से दोनों राशियों (मेष – वृश्चिक) के स्वामी मंगल एकाधिपत्य के होने से दोष नहीं होगा तथा लग्न या सिंह एवं विवाह लग्न मीन होने से लग्नेश सूर्य और अष्टमेश गुरू में मित्रता होने से दोष नहीं होता है ।

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि विवाह मुहूर्त के लिए मुहूर्त शास्त्रों में शुभ नक्षत्रों और तिथियों का विस्तार से विवेचन किया गया है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद,रोहिणी, मघा, मृगशिरा, मूल, हस्त, अनुराधा, स्वाति और रेवती नक्षत्र में, 2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12, 13, 15 तिथि तथा शुभ वार में तथा मिथुन, मेष, वृष, मकर, कुंभ और वृश्चिक के सूर्य में विवाह शुभ होते हैं। मिथुन का सूर्य होने पर आषाढ़ के तृतीयांश में, मकर का सूर्य होने पर चंद्र पौष माह में, वृश्चिक का सूर्य होने पर कार्तिक में और मेष का सूर्य होने पर चंद्र चैत्र में भी विवाह शुभ होते हैं। जन्म लग्न से अथवा जन्म राशि से अष्टम लग्न तथा अष्टम राशि में विवाह शुभ नहीं होते हैं। विवाह लग्न से द्वितीय स्थान पर वक्री पाप ग्रह तथा द्वादश भाव में मार्गी पाप ग्रह हो तो कर्तरी दोष होता है, जो विवाह के लिए निषिद्ध है। इन शास्त्रीय निर्देशों का सभी पालन करते हैं, लेकिन विवाह मुहूर्त में वर और वधु की त्रिबल शुद्धि का विचार करके ही दिन एवं लग्न निश्चित किया जाता है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

तृतीयांश – तृतीय अंश

निषिद्ध – जो नहीं किया जाने वाला हो

प्रदाता – विशेष रूप से देने वाला

सर्वोपरि – सबसे उपर

संर्वधन – वृद्धि

श्रेष्ठ – महान

त्रिबल शुद्धि – सूर्य, चन्द्र एवं गुरू की शुद्धि

स्थानगत – स्थान में गया हुआ

स्वक्षेत्रादिगत – अपने क्षेत्र में गया हुआ

असमर्थ – जिसके पास सामर्थ्य न हो

वृद्धावस्था – बुढ़ा होने की अवस्था

पंचमस्थ – पंचम में स्थित

विद्ध – वेध

मंगलेषु - मंगल कार्यों में

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. क
5. क

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. वृहज्जयोतिसार
3. भारतीय ज्योतिष
4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

मुहूर्त्त पारिजात

मुहूर्त्तगणपति

मुहूर्त्तचिन्तामणि - पीयूष धारा

मेलापक मीमांसा

विवाह वृन्दावन

विवाहपटल

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिबल शुद्धि विचार का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. त्रिज्येष्ठ विचार को लिखते हुए वर - कन्या मिलान के प्रमुख नियमों को लिखिए।
3. विवाह में किये जाने वाले शुद्धि विचार का उल्लेख कीजिए।
4. गुरू एवं शुक्र के बाल्यवृद्धत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई – 5 विवाह मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के द्वितीय खण्ड की पॉचवीं इकाई 'विवाह मुहूर्त्त' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। भारतीय सनातन परम्परा में 'विवाह' मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। विवाह किस समय किया जाना है ? उसका शुभ मुहूर्त्त कब होता है ? इसका अध्ययन आप इस इकाई में करेगें।

ज्योतिष शास्त्रानुसार जिस समय में विवाह किया जाता है, उसे शुभ विवाह मुहूर्त्त की संज्ञा देते हैं। इस इकाई के पूर्व आपने वर एवं कन्या वरण, त्रिबल शुद्धि आदि का अध्ययन कर लिया है, आइये इस इकाई में विवाह मुहूर्त्त का अध्ययन करते है।

5.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ विवाह क्या है।
- ❖ विवाह किस समय में होता है।
- ❖ ज्योतिष शास्त्रानुसार विवाह का प्रयोजन क्या है ।
- ❖ विवाह हेतु शुभाशुभ मुहूर्त्त कौन – कौन है।
- ❖ विवाह में क्या – क्या होता है ।

5.3 विवाह मुहूर्त्त

भारतीय ज्योतिष में किसी कार्य विशेष को प्रारम्भ एवं संपादित करने हेतु एक निर्दिष्ट शुभ समय होता है, जिसे 'मुहूर्त' कहते हैं। शुभ मुहूर्त में कार्य प्रारंभ करने से कार्य निर्विघ्न तथा यथाशीघ्र सफल होता है। मुहूर्त शास्त्रो में पंचांग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) गणना के आधार पर शुभ और अशुभ मुहूर्तों का निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक कार्य के अनुसार मुहूर्त का प्रारूप भी भिन्न होता है। भारतीय संस्कृति के मुख्य प्रतीक षोडश संस्कारों के मुहूर्तों का वर्णन भी मुहूर्त्त शास्त्र में पृथक रूप से किया गया है। गृहस्थाश्रम को समस्त आश्रमों का मूलाधार व सर्वश्रेष्ठ आश्रम के रूप में बताया गया है। मनुष्य विद्या प्राप्ति के पश्चात् गृहस्थाश्रम में ही प्रवेश करता है और इस आश्रम में प्रवेशार्थ प्रथम सोपान विवाह है। **विवाह** मानव जीवन का अभिन्न अंग है, जिसके सहारे मनुष्य अपने जीवन को सतत् सुचारू रूप से चला सकने में सक्षम होता है। यदि मानव का दाम्पत्य जीवन सुखमय होता है, तो उसके जीवन से जुड़े शेष कार्य भी व्यवस्थित रूप से संपादित होते रहता है।

मुहूर्त शास्त्र में मुख्य रूप से 'शुभ योग' निम्नलिखित हैं :- सिद्धि योग, अमृतसिद्धि योग, सर्वार्थसिद्धि योग, रविपुष्य योग, गुरुपुष्य योग, पुष्कर योग, द्वि-त्रिपुष्कर योग, राज योग, रवि योग तथा कुमार योग। मुहूर्त्त ग्रन्थों में विवाह के साथ - साथ नींव मुहूर्त, गृह प्रवेश, यात्रा आरंभ तथा जलाशय निर्माण प्रारंभ के मुहूर्त का वर्णन भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त तिथि, वार, नक्षत्र आदि के संयोग से भी कतिपय मुहूर्त बनते हैं, जिनमें संस्कार एवं विशिष्ट कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य किये जा सकते हैं। ऐसे मुहूर्त 'शुभ योग' कहलाते हैं।

विवाह के आठ भेद है –

ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य, आर्ष, गान्धर्व, आसुर,राक्षस, एवं पिशाच। इनमें प्रथम चार प्रकार श्रेष्ठ हैं। गान्धर्व विवाह मध्यम हैं तथा शेष तीन प्रकार को अधम व निकृष्ट माना गया हैं।

विवाह मुहूर्त्त -

मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़, इन महीनों में विवाह करना शुभ है। विवाह में कन्या के लिए गुरूबल वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए। प्रत्येक पंचांग में विवाह मुहूर्त्त लिखे जाते है। इनमें शुभ सूचक खड़ी रेखाऍ और अशुभ सूचक टेढ़ी रेखाऍ होती है। ज्योतिष में दस दोष बताये गये है। जिस विवाह के मुहूर्त्त में जितने दोष नहीं होते है, उतनी खड़ी रेखाऍ होती है और दोषसूचक टेढ़ी रेखाऍ मानी जाती है। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त दस रेखाओं का होता है। मध्यम सात आठ रेखाओं का और जघन्य पॉच रेखाओं का होता है। इससे कम रेखाओं के मुहूर्त्त को निन्द्य कहते है।

विवाह में गुरूबल विचार-

वृहस्पति कन्या की राशि से नवम पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, दशम, तृतीय षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, एवं द्वादश राशि में अशुभ होता है।

विवाह में चन्द्रबल विचार –

चन्द्रमा वर और कन्या की राशि में तीसरा छठा, सातवॉ , दसवॉ, ग्यारहवॉ शुभ पहला, दूसरा, पॉचवॉ, नौवॉ दान देने से शुभ और चौथा, आठवॉ, बारहवॉ अशुभ होता है। विवाह में अन्धादि लग्न व उनका फल दिन में तुला और वृश्चिक राशि में तुला और मकर बधिर है तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या , मिथुन, कर्क अन्ध संज्ञक है।

दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन लग्न पंगु होते है। किसी- किसी आचार्य के मत से धनु, तुला एवं वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर है। मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे होते हैं। सिंह, मेष, एवं वृष

लग्न ये दिन में अन्धे है और मकर , कुम्भ, मीन ये लग्न प्रात: काल दरिद्र दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा, रात्रान्ध लग्न में हो तो सन्तति भरण, पंगु में हो तो धन नाश होता है।

विवाह लग्न विचार -

विवाह के शुभ लग्न तुला, मिथुन,कन्या, वृष व धनु है। अन्य लग्न मध्यम होते है।

लग्न शुद्धि – लग्न से १२ वें शनि, दसवें मंगल तीसरे शुक्र लग्न में चन्द्रमा और क्रूरग्रह अच्छे नहीं होते लग्नेश शुक्र - चन्द्रमा छठें और आठवें में शुभ नहीं होता है और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता है।

ग्रहों का बल –

प्रथम, चौथे, पॉचवें, नौवें, दसवें स्थान में स्थित वृहस्पति सभी दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा सर्वोत्तम लग्न में स्थित नवमांश दोषों को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पॉचवें, नौवें और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में वृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को दूर करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवमांश का स्वामी यदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

विवाह से सम्बन्धित विभिन्न मुहूर्त्त –

वर वरण मुहूर्त्त –

> **वरवृत्तिं शुभे काले गीतवाद्यादिभिर्यत:।**
> **ध्रुवभे कृतिका पूर्वा कुर्याद्वापि विवाहभे।।**
> **उपवीतं फलं पुष्पं वसांसि विविधानि च।**
> **देयं वराय वरणे कन्याभ्राता द्विजेन वा।।**

शुभ मुहूर्त्त में गीत वाद्य से युक्त होकर ध्रुवसंज्ञक कृत्तिका, तीनों पूर्वा और विवाह में कहे हुए नक्षत्रों में, यज्ञोपवीत, फल – पुष्प तथा अनेक प्रकार के वस्त्र, रत्न आदि से युक्त होकर कन्या का भाई या ब्राह्मण वर का वरण तिलक करना चाहिए।

कन्या वरण मुहूर्त्त –

> **पूर्वात्रय श्रवण मित्रभ वैश्वदे हौताशवासवसमीरणदैवतेषु।**
> **द्राक्षाफलेक्षु कुसुमाक्षतपूर्णपाणिरश्रान्तशान्तहृदयो वरयेत्कुमारीम्।।**

तीनों पूर्व, श्रवण , अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, स्वाति और विशाखा इन नक्षत्रों में पुष्प, ऋतुफल, अक्षतादि से पूर्ण अंजलिबद्ध होकर शान्ति पूर्वक कुमारी (कन्या) का वरण करना शुभ

होता है।

तैलहरिद्रालेपन मुहूर्त्त –

मेषादिराशिजवधूवरयोर्बटोश्च
तैलादिलेपनविधौ कथिताऽत्र संख्या।
शैलादिश: शरदिगक्ष नगाद्रिबाण
बाणाक्षबाणगिरयो विबुधैस्तु कैश्चित्॥

शतपद चक्रानुसार वर – कन्या या कुमार का नामाद्यक्षर नाम राशि जानकर मेषादि राशिक्रम से तैलादिलेपन में ज्योतिर्विदों ने ७,१०,५,१०,५,७,७,५,५,५,५,७ संख्या कही है।

विवाह में मण्डप निर्माण एवं लक्षण -

मंगलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानत:।
कार्य षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशावधि॥
स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता।
शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्शिम्॥
द्वारविद्धा बलीविद्धा कूपवृक्षव्यधा तथा।
न कार्या वेदिका तज्ज्ञै: शुभमंगलकर्मणि॥

समस्त मंगलकार्यों में कर्ता के हाथ से सोलह, बारह या दस हाथ चारों तरफ बराबर माप का मण्डप बनना चाहिए। जिसके बीच में एक सुन्दर वेदी, चार स्तम्भ और चारों दिशा अनेक रंग से चित्रित शोभायमान कलश से युक्त रहे। द्वार, कूप, वृक्ष, खात, दीवार इत्यादि के वेध से रहित विद्वानों के निर्देशानुसार बनाना श्रेष्ठ होता है।

ऐशान्यां स्थापयेत्कुम्भं सिंहादित्रिभगे रवौ।
वृश्चिकादित्रिभे वायौ नैऋत्यां कुम्भतात्रिभे।
वृषात्त्रये तथाऽऽग्नेय्यां स्तम्भखातं तदैव हि।

सिंहादि तीन राशियों में सूर्य के रहने से ईशान कोण में स्तम्भ तथा कुम्भ का पहले स्थापना करना शुभ है। वृश्चिक आदि तीन राशियों में रहने से वायु कोण में, कुम्भ आदि तीन राशि में नैऋत्य कोण में और वृष आदि तीन राशियों में सूर्य के होने से अग्निकोण में स्तम्भ और घट का स्थापना करना शुभ है।

विवाह नक्षत्र –

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगो मघा।

अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मंगलप्रदाः ।।

रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त ये नक्षत्र विवाह में मंगलदायक है।

विवाह मास –

मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचेः।
अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि।।

मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष का सूर्य हो तो विवाह करना शुभ है । मिथुन के सूर्य में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से दशमी पर्यन्त श्रेष्ठ हैं , वृश्चिक के सूर्य हों तो कार्तिक में, मकर के सूर्य हों तो पौष में और मेष के सूर्य हों तो चैत्र में भी विवाह हो सकता है।

वैवाहिक मास फल –

माघे धनवती कन्या फाल्गुने सुभगा भवेत्।
वैशाखे च तथा ज्येष्ठे पत्युरत्सन्तवल्लभा ।।
आषाढ़े कुलवृद्धिःस्यादन्ये मासाश्च वर्जिताः।
मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदाः।।

माघ में विवाह करने से कन्या धनवती होती है। फाल्गुन में सौभाग्यवती और वैशाख तथा ज्येष्ठ में पति की अत्यन्त प्रिया होती है, एवं आषाढ़ में विवाह करने से कुल की वृद्धि होती है, अन्य मास विवाह में वर्जित हैं परन्तु कोई – कोई विद्वानों ने विवाह में मार्गशीर्ष मास का भी ग्रहण किया है।

बोध प्रश्न –

१. विवाह कितने प्रकार के होते है –

क. ६ ख. ८ ग. १० घ. १२

२. वृहस्पति कन्या की राशि से चतुर्थस्थ हो तो, होता है –

क. शुभ ख. अशुभ ग. शुभाशुभ घ. कोई नहीं

३. निम्न में विवाह हेतु शुभ लग्न होता है –

क. मेष ख. तुला ग. कर्क घ. वृश्चिक

४. कन्या के आषाढ़ मास में विवाह का फल होता है –

क. धनवती ख. सौभाग्यवती ग. अत्यन्त प्रिया घ. कुल की वृद्धि

५. वर की राशि से ४,८,१२ सूर्य हों तो विवाह करने पर होता है –

क. सुखदायक ख. मृत्युदायक ग. अशुभकारक घ. कोई नहीं

विवाह में गणना विचार –

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ।

गणमैत्रं भकूटं च नाडी चेते गुणाधिका: ।।

वर्ण , वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गण, भकूट और नाड़ी ये सभी गुणों में एक से अधिक माने गये है।

वर्जित सूर्य –

अष्टमे च चतुर्थे च द्वादशे च दिवाकरे ।

विवाहितो वरो मृत्युं प्राप्नोत्यत्र न संशय: ।।

वर की राशि से आठवें, चौथे या बारहवें सूर्य में विवाह किया जाय तो नि:सन्देह वर की मृत्यु होती है।

सामान्य सूर्य –

एकादशस्तृतीयो वा षष्ठश्च दशमोऽपि वा।

वरस्य शुभदो नित्यं विवाहे दिननायक: ।।

ग्यारहवें, तीसरे, छठें और दसवें सूर्य विवाह में वर के लिए बहुत शुभ हैं ।

सूर्य परिहार –

गर्ग, अंगिरा, गौतम, कश्यप और पाराशर आदि मुनियों की आज्ञा है कि दूसरे, पॉचवें और नवें स्थान के सूर्य तेरह वर्ष की अवस्था के बाद शुभ हो जाते है। अत: इसके पश्चात् विवाहादि शुभ कार्य किये जा सकते है तथा सुख समृद्धि प्राप्त होती है।

दक्षिणात्य पञ्चबाण दोष -

लग्नेनाढ्या यातितिथ्योऽङ्कतष्टा: ।

शेषे नाग द्वयब्धितर्केन्दुसंख्ये ।।

रोगो वह्नी राजचौरो च मृत्यु ।

र्बाणश्चायं दाक्षिणात्य प्रसिद्ध: ।।

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर जितनी तिथियॉ बीत गई हो, उस तिथि संख्या में विवाह की लग्न संख्या को जोड़कर ९ का भाग देनेसे यदि ८ शेष बचे तो रोग, २ शेष बचे तो अग्नि, ४ शेष बचे तो राज, ६ शेष बचे तो चौर और एक शेष बचे ता मृत्युबाण होता है। यह दक्षिणात्य में प्रसिद्ध है। अन्य देशों में इसे नहीं देखना चाहिए।

बाण दोष परिहार –

रात्रौ चौररूजौ दिवा नरपतिर्वह्निः सदा सन्ध्ययो।
मृत्युश्चाथ शनौ नृपो विदि मृतिभौमेऽग्निचौरो रवौ।।
रोगोऽथ व्रतगेहगोपनृपसेवायानपाणिग्रहे ।
वर्ज्याश्च क्रमतो बुधै रूगनलक्ष्मापाल चौरा मृतिः।।

१. रात में चौर - रोग बाण , दिन में राजबाण, सर्वदा अग्निबाण और दोनों सन्ध्याओं में मृत्युबाण शुभ नहीं होता है।
२. शनिवार को राजबाण, बुधवार को मृत्युबाण, मंगलवार को अग्नि और चौरबाण, रविवार को रोगबाण हो तो कोई कार्य नहीं करना चाहिए।
३. उपनयन में रोगबाण, गृहच्छादन में अग्निबाण, नृपसेवा में राजबाण, यात्रा में चौरबाण और विवाह में मृत्युबाण को त्याग देना चाहिए।

इस प्रकार बाण दोष परिहार का विवेचन किया जाता है।

बाण	रोग	अग्नि	नृप	चोर	मृत्यु
सूर्यगतांश	८ १७ २६	२ ११ २० २९	४ १३ २२	६ १५ २४	१ १० १९ २८
समय	रात्रौ	सर्वदा	दिवा	रात्रौ	२ सन्ध्या
वार	रवि	भौम	शनि	भौम	बुध
कार्य	उपनयन	गृहच्छादन	राजसेवा	यात्रा	विवाह

उदयास्त शुद्धि विचार –

यदालग्नांशेशो लवमथ तनुं पश्यति युतो।
भवेद्वायं वोढुः शुभफलमनल्पं रचयति।।
लवद्यूनस्वामी लवमदनभं लग्नमदनं ।
प्रपश्येद्वा वध्वाः शुभमितरथा ज्ञेयमशुभम् ।।

यदि विवाह लग्न में जो नवमांश हो उसका स्वामी नवमांश को देखता हो या युत हो अथवा लग्न को देखता हो या लग्न में बैठा हो (२ योग) में तो वर के लिए स्वल्प शुभ फल देता है।
विवाह लग्न में जो नवमांश हो, उससे सप्तम राशि का स्वामी, सप्तम नवांश को देखता हो अथवा

नवमांश से युताहो, अथवा विवाह लग्न गत नवमांश से सप्तम नवमांश का स्वामी लग्न से सप्तम को देखता हो तो कन्या के लिए शुभ फलदायक होता है। उससे विपरीत स्थिति हो तो दोनों के लिए अशुभ होता है।

मुहूर्त संबंधी कुछ जानकारियॅा :

1. अमावस्या तिथि में मांगलिक कार्यों को प्रारंभ नहीं करना चाहिये।

2. रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) में आजीविका संबंधी किसी भी कार्य को प्रारंभ नहीं करना चाहिये।

3. नंदा तिथियों (प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी) में किसी भी योजना को पारित अथवा क्रियान्वित नहीं करें।

4. रविवार, मंगलवार, एवं शनिवार को मेल-मिलाप एवं संधि के कार्य न करें।

5. कोई भी ग्रह जिस दिन अपनी राशि परिवर्तित करें, उस तिथि और नक्षत्र में किसी भी कार्य की रूपरेखा नहीं बनायें और न ही कोई कार्य प्रारंभ करें।

6. जिस दिन नक्षत्र एवं तिथि का योग 13 आये, उस दिन पारिवारिक अथवा सामाजिक उत्सव अथवा कार्य का आयोजन नहीं करें।

7. जब भी कोई ग्रह उदय या अस्त हो, तो उससे तीन दिन पूर्व और बाद तक भी अपने किसी विशेष कार्य की शुरूआत नहीं करें।

8. अपनी जन्म राशि का और जन्म नक्षत्र का स्वामी जब अस्त हो, वक्री हो अथवा शत्रु ग्रहों के मध्य हो, उस समय में भी निजी जीवन से जुड़े और आय संबंधी क्षेत्रों का विस्तार अथवा योजनाओं का क्रियान्वयन नहीं करें। बुध ग्रह को अस्त -दोष कम लगता है।

9. तिथि, नक्षत्र एवं लग्न की समाप्ति हो रही हो, उस समय जीवन, मृत्यु और आय से जुड़े किसी कार्य को अंजाम नहीं देना चाहिये।

10. क्षय तिथि को भी त्यागना चाहिये।

11. समीपवर्ती ग्रहण जिस नक्षत्र में हुआ हो, उस नक्षत्र को अगले ग्रहणपर्यन्त शुभ कार्यों से दूर रखा जाता है।

12. जन्म राशि से चौथी, आठवीं, और बारहवीं राशि पर जब चंद्रमा हो, उस समय प्रारंभ किये गये कार्य नष्ट हो जाते हैं।

13. शुभ कार्यों के प्रारंभ में भद्राकाल से बचना चाहिये।

14. चंद्रमा जब कुंभ अथवा मीन राशि में हो, उस समय घर में अग्नि संबंधी वस्तुएं जैसे ईंधन, गैस

सिलेंडर, पेट्रोल, अस्त्र-शस्त्र, नये बर्तन, बिजली का सामान अथवा मशीनरी नहीं लानी चाहिये।

15. विवाह के लिये मंगलवार को कन्या का और सोमवार को वर का वरण नहीं करना चाहिये।
16. जन्मवार एवं जन्म नक्षत्र में नये कपड़े पहनना अच्छा होता है।
17. पुष्य नक्षत्र केवल विवाह को छोड़कर अन्य सभी कार्यों में शुभ होता है।
18. देवशयन अवधि में बालक को स्कूल में दाखिला नहीं दिलाना चाहिये।
19. चर (गतिशील, यात्रा संबंधी) कार्यों हेतु चर लग्न (मेष, कर्क, तुला मकर), स्थिर कार्यों (विवाह एवं भवन निर्माण) के लिये स्थिर लग्न (वृषभ, सिंह, वृश्चिक, कुंभ) तथा द्विस्वभाव राशियों का पूर्वार्ध स्थिर कार्यों के लिये प्रयोग किया जा सकता है।
20. घर के किसी बुजुर्ग का श्राद्ध दिवस हो अथवा मृत्यु तिथि हो, उस दिन भी किसी नये कार्य की शुरूआत नहीं करनी चाहिये।
21. साक्षात्कार लेने और देने अथवा परीक्षा फार्म भरने में नंदा और जया तिथियां शुभ मानी जाती है।
22. सूर्य जब बुध और गुरु की राशियों में हो, तो उस समय नये भवन में प्रवेश नहीं करना चाहिये।
23. मंगलवार को धन उधार नहीं लेना चाहिये और बुधवार को देना नहीं चाहिये।
24. मंगलवार को ऋण चुकाना और बुधवार को धन संग्रह करना शुभ होता है।
25. सोमवार और शनिवार को पूर्व दिशा में, गुरुवार को दक्षिण दिशा में, रविवार और शुक्रवार को पश्चिम दिशा में, मंगलवार और बुधवार को उत्तर दिशा में व्यावसायिक अथवा पारिवारिक कार्य हेतु यात्रा नहीं करनी चाहिये। किसी भी व्यक्ति के जीवन स्तर को उठाने के लिये मुहूर्त एक सशक्त माध्यम है। जिन व्यक्तियों की जन्मपत्रिकायें नहीं होती, उनका भविष्य देखने के लिये शुभ मुहूर्त वरदान सिद्ध होते हैं। मुहूर्त की कुंडली के आधार पर दंपत्ति के भावी जीवन का घटनाक्रम बताया जा सकता है। विवाह, मुंडन, गृहारंभादि शुभ कार्यों में मास, तिथि, नक्षत्र, योगादि की शुद्धि के साथ विवाह लग्न की शुद्धि को विशेष महत्व एवं प्रधानता दी गई है। तिथि को शरीर, चंद्रमा को मन, योग - नक्षत्र आदि को शरीर के अंग तथा लग्न को आत्मा माना गया है।

यथा - तिथिः शरीरं मन इन्दुवीर्य विलग्नमात्माऽवयवास्तु- भाद्याः ।

लग्न बल के बिना जो कुछ भी शुभ कार्य किया जाता है, उसका फल वैसे ही व्यर्थ हो जाता है, जैसे ग्रीष्मकाल में बिना जल के नदी। लग्नवीर्य बिना यत्र यत्कर्म क्रियते बुधैः। तत्फलं विलयं याति ग्रीष्मे कुसरिता यथा॥ सभी शुभ कार्यों में लग्न शुद्धि का विशेष महत्त्व है। विवाह लग्न का निश्चय करना हो, तो त्रिविक्रम संहितानुसार, लग्न स्थान में चंद्र तथा सूर्य, शनि, मंगल, राहु, केतु आदि क्रूर ग्रह न हों,

लग्न से छठे स्थान में शुक्र, व चंद्र व लग्नेश न हो तथा आठवें स्थान में चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र व लग्नेश नहीं होने चाहिये तथा सप्तम स्थान में कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिये। सातवें चंद्र और गुरु समफल करते हैं। अर्थात् चंद्र, गुरु का दानादि करने से शांति हो जाती है। त्याज्या लग्नेऽब्दयो मंदः षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः। रन्ध्रे चन्द्रादय पंच, सर्वेऽब्जगुरु समौ॥ परिहार स्वरूप 12वें शनि, तीसरे शुक्र, चतुर्थ में राहु, दशम भाव में मंगल का दोष यथोचित दानादि करने से शांति हो जाती है। विवाह में ग्राह्य शुभ लग्न : मुहूर्त्त ग्रंथों के अनुसार विवाह लग्न काल में 3, 6, 8, 11 वें सूर्य तथा इन्हीं स्थानों (3, 6, 11) में राहु, केतु और शनि भी शुभ हैं। 3, 6 व 11 सिद्धि योग, अमृतसिद्धि योग, सर्वार्थसिद्धि योग, रविपुष्य योग, गुरुपुष्य योग, पुष्कर योग, द्वि-त्रिपुष्कर योग, राज योग, रवि योग तथा कुमार योग जैसे शुभ योगों में संस्कार एवं विशिष्ट कार्यों के अतिरिक्त अन्य सभी कार्य किये जा सकते हैं। पुष्य नक्षत्र केवल विवाह को छोड़कर अन्य सभी कार्यों में शुभ होता है। जन्म राशि से चौथी, आठवीं और बारहवीं राशि में जब चंद्रमा हो उस समय प्रारंभ किये गये कार्य नष्ट हो जाते हैं। मन, योग - नक्षत्र आदि को शरीर के अंग तथा लग्न को आत्मा माना गया है। यथा : तिथिः शरीरं मन इन्दुवीर्य विलग्नमात्माऽवयवास्तु- भाद्याः लग्न बल के बिना जो कुछ भी शुभ कार्य किया जाता है, उसका फल वैसे ही व्यर्थ हो जाता है, जैसे ग्रीष्मकाल में बिना जल के नदी। लग्नवीर्य बिना यत्र यत्कर्म क्रियते बुधैः। तत्फलं विलयं याति ग्रीष्मे कुसरिता यथा॥ सभी शुभ कार्यों में लग्न शुद्धि का विशेष महत्त्व है। विवाह लग्न का निश्चय करना हो, तो त्रिविक्रम संहितानुसार, लग्न स्थान में चंद्र तथा सूर्य, शनि, मंगल, राहु, केतु आदि क्रूर ग्रह न हों, लग्न से छठे स्थान में शुक्र, व चंद्र व लग्नेश न हो तथा आठवें स्थान में चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र व लग्नेश नहीं होने चाहिये तथा सप्तम स्थान में कोई भी ग्रह नहीं होना चाहिये। सातवें चंद्र और गुरु समफल करते हैं। अर्थात् चंद्र, गुरु का दानादि करने से शांति हो जाती है। त्याज्या लग्नेऽब्दयो मंदः षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः। रन्ध्रे चन्द्रादय पंच, सर्वेऽब्जगुरु समौ॥ परिहार स्वरूप 12वें शनि, तीसरे शुक्र, चतुर्थ में राहु, दशम भाव में मंगल का दोष यथोचित दानादि करने से शांति हो जाती है।

विवाह में ग्राह्य शुभ लग्न :

मुहूर्त्त ग्रंथों के अनुसार विवाह लग्न काल में 3, 6, 8, 11 वें सूर्य तथा इन्हीं स्थानों (3, 6, 11) में राहु, केतु और शनि भी शुभ हैं। 3, 6 व 11 वें मंगल 2, 3, 11 वें चंद्रमा, 3, 6, 7 शुभ और 8वें भाव को छोड़ अन्य भावों में स्थित शुक्र शुभ होता है। ग्यारहवें भाव में सूर्य तथा केंद्र त्रिकोण में गुरु लग्नगत अनेक दोषों का परिहार करते हैं। लग्ने वर्गोत्तमे वेन्दौ द्यूनाथे लाभगेऽथवा। केंद्र कोणे गुरौ दोषा नश्यन्ति सकलाऽपि॥ जन्म राशि से अष्टमस्थ लग्न : वर कन्या की जन्म राशि या लग्न से

चतुर्थ, अष्टम तथा बारहवीं राशिस्थ लग्न अशुभ कहे गये हैं।

यथोक्तम् -

सुखघ्नं तुर्ममुद्वाहे द्वादश वित्तनाश कृत । जन्म भात् जन्म लग्नाच्च मृत्युदलग्नमष्टमम् ॥

परंतु परिहार स्वरूप जन्म राशि या लग्न राशि का स्वामी तथा विवाह लग्न का स्वामी ग्रह समान हो, अथवा मित्र क्षेत्री हो, अथवा अष्टमस्थ लग्न राशि का स्वामी केंद्र स्थित हो अथवा गुर्वादि शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो अष्टम लग्न का दोष दूर होता है। कर्त्तरी दोष : लग्न में पापी ग्रह मार्गी होकर 12 वें भाव में तथा क्रूर अथवा पापी ग्रह वक्री होकर दूसरे भाव में हो, तो पापकर्त्रि दोष होता है। यह योग दारिद्रय, शोक व मृत्यु तुल्य कष्टकारी होता है ।

परिहार : पापकर्तरि दोषकारक ग्रह नीच, शत्रु क्षेत्री, अथवा अस्तगत हो, तो इस दोष का परिहार हो जाता है। इसके अतिरिक्त गुरु, शुक्र, बुध इनमें से कोई शुभ ग्रह केंद्र, त्रिकोण में अथवा दूसरे या 12 वें भावस्थ गुरु हो तो भी कर्तरि दोष निवारण हो जाता है। अष्टम भौम का परिहार : मंगल अस्तंगत, नीच राशि का (कर्क) या शत्रु राशि (मिथुन एवं कन्या) का होकर अष्टम स्थान में हो, तो दोषकारक नहीं, परंतु लग्नेश होकर अष्टगत नहीं होना चाहिए। अस्तगते नीचगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा। कुजाष्टमोद्र्भवो दोषो न किंचिदापि विद्यते॥ छठे, बारहवें चंद्र का परिहार, नीच राशि, शत्रु राशि या नीच राशिगत चंद्रमा 6 या 12वें स्थानस्थ होना दोषपूर्ण नहीं माना गया ।

जैसे - वृश्चिक, मिथुन, कन्या राशि 3, 6 नीचराशिगते चन्द्रे नीचांशगतेऽपि वा, चन्द्रे षष्ठारि रिष्फस्थे दोषो नास्ति न सशंयः। परंतु लग्नेश होकर चंद्र छठे, आठवें नहीं होना चाहिये। लग्नस्थ चंद्र का परिहार- "कर्किगोस्थः पूर्णो विधुस्तनौ" व्रतबन्धोक्त अनुसार वृष, कर्क एवं पूर्ण चंद्रमा या शुभग्रह से दृष्ट हो तो लग्न में दोषकारक नहीं होता। षष्ठाष्टमस्थ शुक्रापवाद : नीच एवं शत्रु राशिगत शुक्र छठे, आठवें हो तो दोषकारक नहीं, परंतु लग्नेश होकर इन भावों में न हो। जैसे नीच राशिगते शुक्रे शत्रु क्षेत्रगतेऽपि वा। भृगु षटकोतिथतो दोषो नास्ति तत्र न संशयः॥ सप्तम भावस्थ चंद्र गुरु - सप्तम भाव में यद्यपि सभी ग्रह वर्जित कहे हैं परंतु चंद्र गुरु का परिहार है। "चंद्र चान्द्री शुक्रजीवा यामित्रे शुभकारकाः।' 'मुहूर्त्तगणपति' अनुसार विवाहादि शुभ कार्य के लग्न में, केंद्र, त्रिकोण में गुरु, शुक्र एवं बुध एवं ग्यारहवें भाव में चंद्र या सूर्य अथवा सप्तमेश हो, तो अनेक दोषों का नाश हो जाता है। वेध दोष परिहार : पंचशलाका चक्रानुसार विवाह नक्षत्र का क्रूर ग्रह द्वारा वेध हो जाने पर विवाहित नक्षत्र सर्वथा त्याज्य माना जाता है। परंतु गुरु, बुध आदि सौम्य ग्रहों का चरण वेध (पहले व चौथे चरण के मध्य तथा दूसरे व तीसरे चरण के मध्य) ही अशुभ माना है। युतिदोष परिहार : पाप एवं क्रूर ग्रह की युति त्याज्य मानी जाती है। परंतु यदि चंद्रमा उच्चस्थ, स्वक्षेत्री या मित्रक्षेत्री (वृष, कर्क, मिथुन, सिंह

एवं कन्या) राशि का हो तो युतिदोष अविचारणीय होता है। यथा : स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो व मित्रक्षेत्रगतो विधुः। युति दोषाय न भवेत् दम्पत्योः श्रेयसेतदा॥ दग्धा तिथि परिहार : विवाह लग्न समय केंद्र त्रिकोणगत गुरु हो एवं एकादश (11वां) भाव शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो, तो दग्धातिथि का दोष नहीं रहता। कश्यपर्वि अनुसार : लग्न से केंद्र, त्रिकोण में गुरु, शुक्र या बुधादि सौम्य ग्रह हो, तो समस्त दोषों का ऐसे परिहार हो जाता है, जैसे भगवान विष्णु के स्मरण मात्र से पापों का नाश हो जाता है। काव्यो गुरु वर्ग सौम्यो वा यदा केन्द्र त्रिकोणगाः। नाशयन्ति अखिलान् दोषान् पापानि व हरिस्मृतिः॥

विवाह योग के लिये जो कारक मुख्य है वे इस प्रकार हैं-

- ❖ सप्तम भाव का स्वामी अशुभ है या शुभ है वह अपने भाव में बैठ कर या किसी अन्य स्थान पर बैठ कर अपने भाव को देख रहा है कि नहीं।
- ❖ सप्तम भाव पर किसी अन्य पाप ग्रह की दृष्टि तो नहीं है।
- ❖ कोई पाप ग्रह सप्तम में बैठा न हो।
- ❖ यदि सप्तम भाव में सम राशि हो।
- ❖ सप्तमेश और शुक्र सम राशि में हो।
- ❖ सप्तमेश बलवान हो।
- ❖ सप्तम में कोई ग्रह नहीं हो।
- ❖ किसी पाप ग्रह की दृष्टि सप्तम भाव और सप्तमेश पर नही हैं।
- ❖ दूसरे, सातवें, बारहवें भाव के स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में हैं, और गुरु से दृष्ट हैं।
- ❖ सप्तमेश की स्थिति के आगे के भाव में या सातवें भाव में कोई क्रूर ग्रह नहीं है।

विवाह में अनिश्चितता -

- सप्तमेश शुभ स्थान पर नही होता है तब।
- सप्तमेश छः आठ या बारहवें स्थान पर अस्त होकर बैठा हो।
- सप्तमेश नीच राशि में हों।
- सप्तमेश बारहवें भाव में है,और लग्नेश या राशिपति सप्तम में बैठा हो।
- चन्द्र शुक्र साथ हों, उनसे सप्तम में मंगल और शनि विराजमान हों।
- शुक्र और मंगल दोनों सप्तम में हों।
- शुक्र मंगल दोनो पंचम या नवें भाव में हों।
- शुक्र किसी पाप ग्रह के साथ हो और पंचम या नवें भाव में हो।

- शुक्र बुध शनि तीनों ही नीच का हों।
- पंचम में चन्द्र हो,सातवें या बारहवें भाव में दो या दो से अधिक पापग्रह हों।
- सूर्य स्पष्ट और सप्तम स्पष्ट बराबर का हो।

विवाह में विलम्ब के योग

- सप्तम में बुध और शुक्र दोनो के होने पर विवाह वादे चलते रहते है,विवाह आधी उम्र में होता है।
- चौथा या लगन भाव मंगल (बाल्यावस्था) से युक्त हो,सप्तम में शनि हो तो कन्या की रुचि शादी में नही होती है।
- सप्तम में शनि और गुरु शादी देर से करवाते हैं।
- चन्द्रमा से सप्तम में गुरु शादी देर से करवाता है,यही बात चन्द्रमा की राशि कर्क से भी माना जाता है।
- सप्तम में त्रिक भाव का स्वामी हो,कोई शुभ ग्रह योगकारक नही हो,तो पुरुष विवाह में विलम्ब से होती है।
- सूर्य मंगल बुध लगन या राशिपति को देखता हो,और गुरु बारहवें भाव में बैठा हो तो आध्यात्मिकता अधिक होने से विवाह में देरी होती है।
- लगन में सप्तम में और बारहवें भाव में गुरु या शुभ ग्रह योग कारक नही हों,परिवार भाव में चन्द्रमा कमजोर हो तो विवाह नही होता है,अगर हो भी जावे तो संतान नही होती है।
- महिला की कुन्डली में सप्तमेश या सप्तम शनि से पीडित हो तो विवाह देर से होता है।
- राहु की दशा में शादी हो,या राहु सप्तम को पीडित कर रहा हो,तो शादी होकर टूट जाती है,यह सब दिमागी भ्रम के कारण होता है।

विवाह का समय

- सप्तम या सप्तम से सम्बन्ध रखने वाले ग्रह की महादशा या अन्तर्दशा में विवाह होता है।
- कन्या की कुन्डली में शुक्र से सप्तम और पुरुष की कुन्डली में गुरु से सप्तम की दशा में या अन्तर्दशा में विवाह होता है।
- सप्तमेश की महादशा में पुरुष के प्रति शुक्र या चन्द्र की अन्तर्दशा में और स्त्री के प्रति गुरु या मंगल की अन्तर्दशा में विवाह होता है।
- सप्तमेश जिस राशि में हो,उस राशि के स्वामी के त्रिकोण में गुरु के आने पर विवाह होता है।
- गुरु गोचर से सप्तम में या लगन में या चन्द्र राशि में या चन्द्र राशि के सप्तम में आये तो विवाह होता है।
- गुरु का गोचर जब सप्तमेश और लगनेश की स्पष्ट राशि के जोड में आये तो विवाह होता है।

- सप्तमेश जब गोचर से शुक्र की राशि में आये और गुरु से सम्बन्ध बना ले तो विवाह या शारीरिक सम्बन्ध बनता है।
- सप्तमेश और गुरु का त्रिकोणात्मक सम्पर्क गोचर से शादी करवा देता है,या प्यार प्रेम चालू हो जाता है।
- चन्द्रमा मन का कारक है,और वह जब बलवान होकर सप्तम भाव या सप्तमेश से सम्बन्ध रखता हो तो चौबीसवें साल तक विवाह करवा ही देता है।

जैमिनी ज्योतिष में विवाह के विचार के लिए उपपद को एक महत्वपूर्ण कारक के रुप में देखा जाता है। उपपद और दाराका से दूसरे एवं सातवें घर एवं उनके स्वामियों का भी विवाह के संदर्भ में विचार किया जाता है। इस विषय में कहा गया है कि अगर दूसरे घर में कोई ग्रह शुभ होकर स्थित हो व उसकी प्रधानता हो अथवा गुरु और चन्द्रमा कारकां से सातवें घर में स्थित हो तो सुन्दर जीवनसाथी प्राप्त होता है। अगर दूसरे घर में कोई ग्रह अशुभ होकर स्थित हो तो एक से अधिक विवाह का संकेत मिलता मिलता है. कारकांश से सातवें घर में बुध होने पर जीवनसाथी पढ़ा लिखा होता है। अगर चन्द्रमा कारकांश से सप्तम में हो तो विदेश में शादी की पूरी संभावना बनती है।

दूसरे घर में अशुभ राशि स्थित होने पर अथवा इस पर किसी अशुभ ग्रह की दृष्टि होने पर जीवनसाथी के जीवन में जोखिम की संभावना रहती है। शनि का कारकांस (Saturn Karkamsa) से सातवें घर में होना यह बताता है कि जीवनसाथी की उम्र अधिक होगी। राहु कारकांश से सातवें घर में होना दर्शाता है कि व्यक्ति का सम्पर्क उनसे हो सकता है जो जीवनसाथी को खो चुके हों और पुनर्विवाह की इच्छा रखते हों। जैमिनी ज्योतिष में बताया गया है कि सूर्य अगर दूसरे घर में हो अथवा इस घर में सिंह राशि हो तो जीवनसाथी दीर्घायु होता है। इसी प्रकार दूसरे घर में आत्मकारक ग्रह हो या इस घर में बैठा ग्रह स्वराशि में हो तब भी जीवनसाथी की आयु लम्बी होती है. उपपद से दूसरे घर में बैठा ग्रह उच्च राशि में हो अथवा इस घर में मिथुन राशि हो तो एक से अधिक विवाह की संभावना रहती है. राहु एवं शनि की युति दूसरे घर में होने पर वैवाहिक जीवन में दूरियां एवं मतभेद होने की संभावना रहती है।

जीवनसाथी के स्वास्थ्य का आंकलन -

इस ज्योतिष विधि में बताया गया है कि जिस पुरूष की कुण्डली में शुक्र और केतु उपपद से दूसरे घर में स्थित हो अथवा उनके बीच दृष्टि सम्बन्ध बन रहा हो तो उनके जीवन साथी को गर्भाशय से स्म्बन्धित रोग होने की संभावना रहती है। बुध और केतु उपपद से दूसरे घर में होने पर अथवा उनके बीच दृष्टि सम्बन्ध होने पर जीवनसाथी को हड्डियों से सम्बन्धित रोग की आशंका बनती है। सूर्य, शनि और राहु उपपद से दूसरे घर में होने पर अथवा इनके बीच दृष्टि सम्बन्ध बनने पर जीवनसाथी

को स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानियों का सामना करना होता है. उपपद से दूसरे घर में शनि और मंगल के बीच दृष्टि सम्बन्ध होने पर तथा दूसरे घर में मिथुन, मेष, कन्या या वृश्चिक राशि होने पर जीवनसाथी को कफ से सम्बन्धित गंभीर रोग होने की संभावना होती है।

दूसरे घर में मंगल अथवा बुध की राशि हो और उस पर गुरू एवं शनि की दृष्टि हो तो जीवनसाथी को कान सम्बन्धी रोग होता है। इसी प्रकार दूसरे घर में मंगल अथवा बुध की राशि हो और उस पर गुरू एवं राहु की दृष्टि हो तो जीवनसाथी को दांतों में तकलीफ होती है। उपपद से दूसरे घर में कन्या या तुला राशि पर शनि और राहु की दृष्टि होने से जीवनसाथी को ड्रॉप्सी नामक रोग होने की आशंका रहती है. जैमिनी ज्योतिष में यह भी कहा गया है कि दूसरे घर में उपपद लग्न हो अथवा आत्मकारक तो वैवाहिक जीवन में मुश्किल हालातों का सामना करना होता है।

स्त्री के गुणों का आंकलन नवमांश कुण्डली से -

जिस स्त्री की नवमांस कुण्डली में बुध और लग्न से गुरू त्रिकोण में होता है वह अपने पति के प्रति समर्पित होती है तथा वैवाहिक जीवन की मर्यादाओं का पालन करती है। यह स्थिति तब भी बनती है जब शुक्र लग्न में होता है। (If the Moon is located in Taurus of the navamsa-chart and Mercury and Venus are in the 4th house from the Ascendant in navamsa the woman is well disposed and intelligent)

वह स्त्री बुद्धिमान एवं नम्र होती है जिनकी नवमांश कुण्डली में चन्द्रमा वृष राशि में होता है तथा बुध एवं शुक्र चौथे घर में होता है। (If Ketu is in navamsa Ascendant or in a trine from it the woman becomes vindicate) नवमांश कुण्डली में केतु लग्न में बैठा हो अथवा त्रिकोण में तो स्त्री में नेक गुणों की कमी का संकेत मिलता है। नवमांश कुण्डली में शनि का लग्न अथवा त्रिकोण में होना भी शुभ लक्षण नहीं माना जाता है क्योंकि इससे स्त्री में सौन्दर्य एवं स्त्री जन्य गुणों की कमी पायी जाती है। नवमांश में केतु का लग्न या त्रिकोण में होना स्त्री में बदले की भावना को उजागर करता है। स्त्री की कुण्डली में लग्न स्थान पर मंगल की दृष्टि होने से स्त्री क्रोधी स्वभाव की होती है।

गोधूलि लग्न विचार –

ऐसी मान्यता है कि विवाह के लिए सबसे उत्तम लग्न गोधूलि लग्न होता है, यहॉ तक कि यदि विवाह का सम्पन्न होना कठिन लग रहा हो तो गोधूलि लग्न में विवाह करना उपयुक्त होता है। गोधूलि लग्न में सभी दोषों का शमन हो जाता है, सिवाय कुलिक क्रान्ति साम्य १,६,८ भावगत चन्द्रमा व इन पॉच स्थितियों का ही शमन नहीं हो पाता है –

कुलिकं क्रान्सिाम्यं च मूर्तोषष्ठाष्टम: शशी।
पंच गोधूलिके त्याज्या अन्य दोषा: शुभावहा:।।

यहाँ पर उल्लेख करना अनिवार्य है कि गोधूलि लग्न का उपयोग उसी स्थिति में करना चाहिए जब शुद्ध लग्न न मिल पा रहा हो । शुद्ध लग्न उपलब्ध हो और उसका त्याग करके गोधूलि लग्न लेना विशेष उपयुक्त नहीं होता है। वृहस्पतिवार को सूर्यास्त के बाद का व शनिवार को सूर्यास्त से पहले का समय छोड़कर लग्न लेने से कुलिक दोष का भी बचाव हो जाता है।

गोधूलि काल ज्ञात करने के लिए सबसे उपयुक्त विधि यह होता है कि उस स्थान का पंचांग या स्थानीय पंचांग से सूर्यास्त काल देखकर उसमें १२ मिनट कम करने के पश्चात् जो समय आये, उसे लेकर सूर्यास्त से १२ मिनट आगे तक का कुल २४ मिनट का काल गोधूलि काल होता है। एक अन्य मत यह भी है कि सूर्यास्त से २४ मिनट पहले व २४ मिनट बाद तक का २ घड़ी या ४८ मिनट का कुल समय गोधूलिकाल मानते हैं ।

विवाह मुहूर्त्त के दिन का विचार उस स्थिति में ही किया जाता है जब क्रान्ति दोष उपस्थित न हो। इस प्रकार गोधूलि लग्न में ग्रहस्थिति लग्न का विचार करना युक्ति संगत नहीं है, वह भी उस स्थिति में जब शुद्ध विवाह मुहूर्त्त का दिन निर्धारित कर लिया गया हो।

अत: यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमा मंगल इत्यादि कहीं भी रहे तो भी हानि नहीं होती है जैसा कि बताया गया है विवाह लग्न में सप्तम स्थान में जब किसी भी ग्रह की स्थिति अच्छी नहीं मानी गयी है, उस स्थिति में भी गोधूलि लग्न को ग्राह्य माना गया है, जबकि सूर्य सदा ही गोधूलि काल में सातवें स्थान में रहेगा।

परिणामस्वरूप गोधूलि काल में ग्रहयोगादि का विचार करना उपयुक्त नहीं होगा। केशवार्क ने विवाह वृन्दावन में ऐसा ही कहा है -

गोधूलिकेऽपि विधुमष्टमषष्ठ मूर्ति
यन्मोचयन्ति तदयं स्वरूचि प्रपंच:।
पंचांगशुद्धिमयमेव विवाहधिष्ण्ये
यस्मादिदं सततमस्तगते पतंगे

इस बात का समर्थन राजमार्तण्डादि ग्रन्थों में भी किया गया है। अत: विवाह मुहूर्त्त बनने पर गोधूलि काल का लग्न सदैव सबके लिए प्रशस्त ही है।

इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में विवाह के लिये अनेकों प्रकार के मुहूर्त्त कहे गये है।

हमारे दिव्य ऋषि महर्षियों ने कृष्ण पक्ष व शुक्ल पक्ष में से शुक्ल पक्ष को समस्त कार्यों हेतु शुभ कहा है। कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि तक, मतान्तर से दशमी तक भी कार्य किये जा सकते है। तिथियों को ऋषियों ने विशेष महत्व नहीं दिया है, परन्तु रिक्ता तिथि का त्याग करना चाहिए।

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्योतिष में किसी कार्य विशेष को प्रारम्भ एवं संपादित करने हेतु एक निर्दिष्ट शुभ समय होता है, जिसे 'मुहूर्त' कहते हैं। शुभ मुहूर्त में कार्य प्रारंभ करने से कार्य निर्विघ्न तथा यथाशीघ्र सफल होता है। मुहूर्त शास्त्रो में पंचांग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) गणना के आधार पर शुभ और अशुभ मुहूर्तों का निर्धारण किया जाता है। प्रत्येक कार्य के अनुसार मुहूर्त का प्रारूप भी भिन्न होता है। भारतीय संस्कृति के मुख्य प्रतीक षोडश संस्कारों के मुहूर्तों का वर्णन भी मुहूर्त्त शास्त्र में पृथक रूप से किया गया है। गृहस्थाश्रम को समस्त आश्रमों का मूलाधार व सर्वश्रेष्ठ आश्रम के रूप में बताया गया है। मनुष्य विद्या प्राप्ति के पश्चात् गृहस्थाश्रम में ही प्रवेश करता है और इस आश्रम में प्रवेशार्थ प्रथम सोपान विवाह है। **विवाह मानव** जीवन का अभिन्न अंग है, जिसके सहारे मनुष्य अपने जीवन को सतत् सुचारू रूप से चला सकने में सक्षम होता है। यदि मानव का दाम्पत्य जीवन सुखमय होता है, तो उसके जीवन से जुड़े शेष कार्य भी व्यवस्थित रूप से संपादित होते रहता है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

मूलाधार – मूल आधार

प्रवेशार्थ – प्रवेश के लिए

दाम्पत्य जीवन – वैवाहिक जीवन

सतत् – हमेशा

कितपय – कुछ

क्रूरग्रह – पापग्रह

सर्वोत्तम – सबसे अच्छा

अंजलिबद्ध – हाथ जोड़कर

अलि – वृश्चिक राशि

कर – हस्त

मधु – चैत्र

वर्जित – नहीं करने योग्य

नवमांश – राशि का नवॉ अंश

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ख
3. ख
4. घ
5. ख

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. भारतीय ज्योतिष
4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मेलापक मीमांसा
2. ज्योतिष सर्वस्व
3. मुहूर्त्तगणपति
4. विवाहपटल
5. मुहूर्त्त पारिजात

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विवाह की उपयोगिता को लिखते हुये विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. विवाह कितने प्रकार के होते है। स्पष्ट कीजिए।
3. विवाह मुहूर्त्त का विश्लेषण कीजिए।

इकाई – 6 विवाह मुहूर्त्त में दस दोष

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 विवाह मुहूर्त्त : परिचय

6.3.1 विवाह मुहूर्त्त में दस दोष

बोध प्रश्न

6.4 सारांश

6.5 पारिभाषिक शब्दावली

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 सहायक पाठ्सामग्री

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के द्वितीय खण्ड की छठी इकाई 'विवाह मुहूर्त्त में दस दोष' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। विवाह मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। ज्योतिष शास्त्रानुसार विवाह मुहूर्त्त में दोष भी बताये गये है, जिनका अध्ययन हम इस इकाई में करने जा रहे हैं विवाह में शुभ के साथ अशुभ का भी विवेचन किया जाता है। आचार्यों द्वारा विवाह मुहूर्त्त में बताये गये दोष विवाह मुहूर्त दोष कहे गये है।

इस इकाई के पूर्व आपने वर एवं कन्या वरण, त्रिबल शुद्धि, विवाह मुहूर्त्त आदि का अध्ययन कर लिया है, आइये इस इकाई में विवाह मुहूर्त्त के दस दोष का अध्ययन करते है।

6.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- विवाह मुहूर्त्त में दोष क्या है।
- अशुभ मुहूर्त्त कौन – कौन से है।
- अशुभ मुहूर्त्त में विवाह करने पर क्या - क्या होता है ।
- विवाह मुहूर्त्त के दस दोष क्या है ।
- दोषों का निराकरण किस प्रकार होता है ।

6.3 विवाह मुहूर्त्त में दस दोष

जगत में मानव जीवन सम्बन्धित जितने भी सम्बन्ध (रिश्ते) है, उनमें सबसे नाजुक रिश्ता पति – पत्नी का होता है। इस रिश्ते में यदि जरा सा भी चूक हो जाय तो जीवन का एक – एक पल बिताना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि इस नाजुक रिश्ते की गांठ में बंधन से पहले बहुत अधिक जॉच परख की जाती है। आपने देखा होगा कि जब आपके घर में किसी के विवाह की बात चलती है तब आपके घर के प्रमुख लोग जाकर देखते हैं कि जिस लड़के अथवा लड़की से शादी की बात चल रही है उनका स्वभाव कैसा है। क्या उन दोनों की जोड़ी सही रहेगी, क्या वे एक दूसरे के योग्य है। तब जाकर विवाह की बात आगे बढ़ती है। इतना सब कुछ जॉच परख करने के बाद भी कई बार ऐसा देखने में आता है कि पति – पत्नी के बीच मनमुटाव है और दोनों अलग हो रहे हैं। इन सभी विषयों को पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है। ज्योतिष के अनुसार गुण की विशेषता को एवं मांगलिक दोष को भी बताया गया है। आइए, इस इकाई में विवाह में जो अनिष्टकारक दस दोष

बताये गये हैं। उस विषय की जानकारी प्राप्त करते है, ताकि दाम्पत्य जीवन में किसी भी प्रकार की समस्यायें न आये।

विवाह में दस दोष –

> **लता पातो युतिर्वेधो यामित्रं बाणपञ्चकम्।**
> **एकार्गलोपग्रहौ च क्रान्तिसाम्यं शशीनयो:।**
> **दग्धा तिथिश्च विज्ञेया दश दोषा: करग्रहे।**
> **पञ्चाधिकेषु दोषेषु विवाहं परिवर्जयेत्॥**

लता, पात, युति, वेध, यामित्र, बाणपञ्चक, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्ध तिथि ये विवाह में मुख्य दस दोष कहे गये हैं।

उक्त दोषों में ५ से अधिक दोष हो तो विवाह नहीं करना चाहिए, उनमें भी यदि क्रूर ग्रह,बिद्धनक्षत्र, पापग्रहकृत यामित्र और मृत्युबाण हो तो विशेषकर त्याग देना चाहिए। कुछ आचार्य शुभ ग्रह से विद्ध नक्षत्र में और शुभ ग्रहकृतयामित्र दोष में विवाह शुभप्रद कहते हैं।

चूँकि दाम्पत्य जीवन में परेशानियों का कारण और भी है। ज्योतिषज्ञ मानते है कि आम तौर पर इस तरह की घटना इसलिए होती है क्योंकि हम बाहरी तौर पर गुणों का ऑकलन करते हैं और कुण्डली में स्थित ग्रहों के गुणों को नजरअंदाज कर जाते हैं। अगर यदि आप चाहते है कि आपका वैवाहिक जीवन प्रेमपूर्ण और सुखमय हो तो इसके लिए विवाह पूर्व कुण्डली मिलान जरूर कर ले कुण्डली मिलान के लिए आप उत्तर भारतीय पद्धति को अपना सकते है। अगर आप दोनों से ऑकलन करना चाहते है, तो यह भी कर सकते हैं। उत्तर भारतीय पद्धति के आठ वर्ग के आकलन करने के पश्चात् आप दक्षिण भारत के २० कुटों से ऑकलन करना चाहे तो इसके अन्तर्गत भूत वर्ग से भी विचार कर ले तो अच्छा रहेगा। भूत वर्ग में नक्षत्रों तथा उनसे सम्बन्धित तत्वों के अनुसार मिलान किया जाता है।

लता दोष विचार –

> **ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिता: स्वपृष्ठे भं सप्तगोजातिशरैर्मितं हि।**
> **संलत्तयन्तेऽर्कशनीज्यभौमा: सूर्याष्टतर्काग्निमितं पुरस्तात्॥**

बुध जिस नक्षत्र पर रहता है उससे पीछे ७ वें नक्षत्र को, राहु अपने पीछे ९ वें नक्षत्र को, पूर्णचन्द्रमा अपने पीछे २२ वें नक्षत्र को और शुक्र अपने पीछे ५ वें नक्षत्र को लात मारता है। इस प्रकार सूर्य अपने आगे १२ वें नक्षत्र को, शनि अपने आगे ८ वें नक्षत्र को, गुरू अपने आगे छठे को तथा मंगल अपने आगे तीसरे नक्षत्र विवाह में वर्जित हैं।

विशेष - लत्ता दोष से युक्त नक्षत्र विवाह में वर्जित हैं।

रविलत्ता वित्तहरी, नित्यं कौजी विनिर्दिशेन्मरणम् ।
चान्द्री नाशं कुर्यात् बौधी नाशं वदन्त्येव ।।
सौरी मरणं कथयति बन्धुविनाशं वृहस्पतेर्लत्ता।
मरणं लत्ता राहोः कार्य विनाशं भृगोर्वदति ।।

पात दोष विचार –

हर्षणवैधृतिसाध्यव्यतिपातकगण्डशूलयोगानाम् ।
अन्ते यन्नक्षत्रं पातेन निपातितं तत्स्यात् ।।

हर्षण , वैधृति, साध्य, व्यतिपातक, गण्ड, शूल, इन छः योगों के अन्त में चान्द्र नक्षत्र में पड़ता है तो वह पातदोष से दूषित होता है। पातयोग से दूषित नक्षत्र विवाह में वर्जित है।

विशेष – अन्य आचार्यों के मत से सूर्य के नक्षत्र से आश्लेषा, मघा, अनुराधा, चित्रा, श्रवण, तथा रेवती तक गणना करनेपर जितनी संख्यायें हों अश्विनी से उतनी संख्या वाले नक्षत्र पातदोष से दूषित होते है।

युति दोष विचार –

चन्द्रे सूर्यादिसंयुक्ते दारिद्रयं मरणं शुभम्।
सौख्यं सापत्न्यवैराग्ये पापद्वययुते मृतिः ।।

चन्द्रमा - ग्रह से युक्त हो तो युति दोष कहलाता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य से युक्त हो तो दरिद्रता, मंगल से युक्त हो तो मरण, बुध से युक्त हो तो शुभ, गुरू से युक्त हो तो सुख, शुक्र से युक्त हो तो शत्रुता , शनि से युक्त हो तो वैराग्य, यदि दो पापग्रह से युक्त हो तो मरण होता है।

विवाह में पञ्चशलाका वेध –

वेधोऽन्योन्यमसौ विरञ्चयभिजितोर्याम्यानुराधर्क्षयो ।
विंश्वेन्द्वोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः ।।
स्वातीवारूणयोर्भवेन्निऋतिभादित्योस्तथोफान्त्ययोः ।
खेटे तत्र गते तुरीय चरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः ।।

यह पञ्चशलाका वेध परस्पर रोहिणी अभिजित में, भरणी अनुराधा में, उत्तराषाढ़ा – मृगशिरा में, श्रवण मघा में, हस्त उत्तराभाद्रपद में, स्वाती शतभिषा में मूल – पुनर्वसु में तथा उत्तराफाल्गुनी रेवती में होता है। अर्थात् परस्पर वेध के जो दो – दो नक्षत्र हैं – इनमें एक में, कोई ग्रह हो तो दूसरा नक्षत्र

विद्ध समझना चाहिए, जो कि विवाह में त्याज्य कहा गया है। इस प्रकार का दोष गौण साधारण है। वास्तव में एक नक्षत्र के प्रथम चरण में ग्रह हो तो दूसरे का चतुर्थ चरण और चतुर्थ चरण में हो तो दूसरे का प्रथम चरण विद्ध होता है एवं द्वितीय और तृतीय चरण में परस्पर वेध होता है। पापग्रह कृत चरण वेध अवश्य त्याज्य कर देना चाहिए ।

यामित्र दोष विचार –

लग्नाचन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम् ।
किं वा बाणाभुगमितलवगे यामित्रं स्यादशुभकरमिदम् ।।

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह हो तो यामित्र दोष होता है । यदि लग्नगत नवमांश या चन्द्रगत नवमांश से ५५ वें नवमांश में ग्रह हो अर्थात् लग्न ग्रह का अन्तर ६ राशि हो तो पूर्ण यामित्र दोष होता है, यह विवाह में अशुभप्रद होता है।

साधारण यामित्र कम दोष देनेवाला और पूर्ण यामित्र अधिक दोष देने वाला होता है, एवं शुभग्रह कृत यामित्र स्वल्पदोषप्रद और पापग्रह कृत अधिक दोषप्रद होता है ।

बाण दोष विचार –

रसगुण शशिनागाब्ध्याढयसंक्रान्तियातां -
शकमिति - रथतष्टाङ्कैर्यदा पञ्चशेष: ।
रूगनल नृपचौरा मृत्यु संज्ञश्च बाणो
नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्य: ।।

तात्कालिक सूर्य के भुक्तांशों को ५ स्थान में रखकर क्रम से ६,३,१,८,४ जोड़कर सब में ९ के भाग देने से प्रथम स्थान में ५ शेष तचे तो रोगबाण, द्वितीय स्थान में अग्नि, तृतीय स्थान में राज, चतुर्थ स्थान में चोर और पंचम स्थान में मृत्युबाण होता है ।

विशेष – सूर्य के गतांशा के अनुसार भी बाणों का निर्धारण किया जाता है ।

जैसे - १,८,१७,२६ इन अंशों में सूर्य हो तो रोगबाण होता है ।

२,११,२०२९ इन अंशों में सूर्य रहे तो अग्नि बाण होता है ।

४,१३,२२ इन अंशों पर सूर्य हो तो राज बाण जानना चाहिए ।

६,१५,२४ इन अंशों पर सूर्य हो तो चौर बाण होता है ।

१,१०,१९,२८ इन अंशों में सूर्य हो तो मृत्युबाण समझना चाहिए ।

एकार्गल दोष (खार्जूर) दोष विचार -

व्याघात गण्ड व्यतिपात पूर्वे

शूलान्त्यवज्रे पारिघाति गण्डे।

एकार्गलाख्यो ह्यभिजित समेतो –

दोषः शशी चेद् विषमर्क्षगोऽर्कात् ।।

व्याघात, गण्ड, व्यतिपात,वज्र, परिघ, अतिगण्ड इन योगों में कोई योग हो उस दिन सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्राश्रित नक्षत्र की संख्या विषम हो तो एकार्गल दोष होता है यहॉ नक्षत्रों की गणना अभिजित् समेत होती है।

बोध प्रश्न –

१. विवाह के प्रमुख दस दोषों में कितने दोष हो तो विवाह नहीं करना चाहिए –

क. ६ ख. ७ ग. ५ घ. ४

२. लता दोष विचार में बुध जिस नक्षत्र पर रहता है उससे पीछे किस नक्षत्र को लाता मारता है –

क. ५ वें ख. ६ वें ग. ७ वें घ. ९ वें

३. युति दोष विचार में चन्द्र सूर्य के साथ युक्त हो तो क्या होता है-

क. मरण ख. दरिद्रता ग. शुभ घ. सुख

४. लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह हो तो कौन सा दोष होता है –

क. बाण दोष ख. पात दोष ग. यामित्र दोष घ. युति दोष

५. १,८,१७,२६ इन अंशों में सूर्य हो तो कौन सा बाण होता है –

क. रोग ख. अग्नि ग. राज घ. चौर

उपग्रह दोष विचार

शराष्टदिक् शक्रनगातिधृत्या

स्तिथिर्धृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च।

उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः

शुभा न देशे कुरूवह्लिकानाम् ।।

यदि सूर्याश्रित नक्षत्र से चन्द्र नक्षत्र तक गणना करने से ५,८,१०,१४,७,१९,१५,१८,२१,२२,२३,२४,२५ इनमें से कोई संख्या हो तो उपग्रह दोष होता है या कहलाता है। यह कुरू और वाह्लिक देश में शुभ नहीं होता है।

क्रान्तिसाम्य दोष विचार –

पञ्चास्याजौ गोमृगौ तौलिकुम्भो कन्यामीनौ कर्क्यली चाप युग्मे।
तत्रान्योन्यं चन्द्रभान्वोर्निरूक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभं मंगलेषु ।।

सिंह – मेष, वृष – मकर, तुला – कुम्भ, कन्या – मीन, कर्क – वृश्चिक , और धनु – मिथुन इन २-२ राशियों में सूर्य – चन्द्रमा के परस्पर रहने पर क्रान्ति साम्य नाम के महापात दोष होता है, जो मांगलिक कार्यों में अशुभ है।

विशेष – इसका तात्पर्य है कि सिंह में सूर्य, मेष में चन्द्रमा, या मेष में सूर्य सिंह में चन्द्रमा इसी प्रकार प्रत्येक राशियों में परस्पर सूर्य – चन्द्रमा के होने पर क्रान्ति साम्य दोष होगा।

महापात दोष २ प्रकार के होते हैं - वैधृतियोग, व्यतिपात योग ।

वैधृति योग -

जब सायन सूर्य – चन्द्रमा का योग १२ राशि के समान होता है अर्थात् १० + २ , ३ + ९, ४ + ८, ५ + ७ , ७ + ५ , १ + ११, इन योगों के अनुसार दोनों के भिन्न गोल और एक अयन होते हैं तथा दोनों के भुजांश समान होने से स्थानीया क्रान्ति भी तुल्य होती है। अत: इसे वैधृत नाम के महापात कहते है।

व्यतीपात योग -

जब सायन सूर्य – चन्द्रमा का योग ६ राशि के समान होता है अर्थात् १ + ५ ,२ + ४, ४ + २, ५ + १, तो दोनों के भिन्न अयन और एक गोल होते हैं तथा दोनों के भुजांश तुल्य होने से क्रान्ति भी तुल्य होती है इसलिए इसे व्यतिपात नाम का महापात कहते हैं ।

दग्ध तिथि विचार -

चापान्त्यगे गो घटगे पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च।
सिंहालिगे नक्रघटे समा: स्युस्तिथ्यो द्वितीया प्रमुखाश्च दग्धा।।

सूर्य यदि धनु या मीन में हो तो द्वितीय, वृष, कुम्भ में हो तो चतुर्थी,कर्क – मेष में हो तो षष्ठी, मिथुन कन्या में हो तो अष्टमी, सिंह – वृश्चिक में हो तो दशमी और मकर या तुला में हो तो, द्वादशी तिथि दग्ध होती है यह भी विवाहादि शुभ कार्यों में वर्जित है।

लता पात आदि दस दोष निवारण के बिना 'विवाह संस्कार' अहित कारक हो जाता है। विवाह में मुख्य रूप से लता, पात, युति, जामित्र, बाण, एकार्गल, उपग्रह,क्रान्तिसाम्य एवं दग्धा तिथि इन दस दोषों का विचार किया जाता है । इनमें से पापग्रह कृत युति, वेध, मृत्युबाण एवं क्रान्तिसाम्य अपरिहार्य होने से नहीं माने गये हैं।

१. युति दोष – चन्द्रमा, वृष, मिथुन, सिंह एवं कन्या राशि में हो तो युति दोष नहीं होता है।

भाव – रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उ0फा0, हस्त, एवं चित्रा नक्षत्र के विवाह मुहूर्त्तों में युतिदोष का परिहार होने से विवाह शुभफलदायक रहता है।

२. वेध दोष – शुभ ग्रह बुध, गुरू, शुक्र का चरणगत वेध ही त्याज्य माना गया है।

भाव – पापग्रह - सूर्य, भौम – शनि, राहु तथा केतु से विद्ध नक्षत्रों का हमें विवाह मुहूर्त्त में त्याग कर देना चाहिए।

३.मृत्युबाण – सूर्य के १,१०१९,२८ भोग्यांश से अग्रिम अंशों का समय मृत्युबाण से दूषित रहता है, जिसका परिहार न होने से सर्वथा त्याज्य मानते हैं।

१.क्रान्तिसाम्य – स्थूल न लेकर गणितागत ही लिया जाता है जो कि महापात गणित प्रक्रिया द्वारा सिद्ध होता है, जो सभी पंचांगों में उल्लेखित होता है।

२. लता दोष - उज्जैन के समीप क्षेत्रों में यह दोष माना जाता है।

३. पात दोष - कुरूक्षेत्र में मानते हैं।

४. युति दोष – बंगाल में मानते हैं।

५. जामित्र दोष – मथुरा में मानते हैं।

६. एकार्गल दोष – भोपाल के समीप मानते हैं।

७. उपग्रह दोष - कश्मीर के पश्चिम भाग में मानते हैं।

८. दग्धातिथि दोष - भोपाल के समीप मानते हैं।

९. सर्वस्व अर्थात् शूल योगान्त नक्षत्र भुजंगपात से दूषित होने के कारण सभी जगह त्याज्य है।

१०. जामित्र दोष - चन्द्रमा उच्च का शुभग्रह कि राशि में, मित्र वर्ग में हो तो जामित्र दोष उत्तम होता है।

दश योग –

> **शशाङ्के सूर्यर्क्षयुतेर्भशेषे खं भूयुगाङ्गनि दशेशतिथ्य:।**
> **नागन्दवोऽङ्केन्दुमिता नखाश्चेद्भवन्ति चैते दशयोगसंज्ञा: ।।**

सूर्य और चन्द्रमा अलग – अलग जिस – जिस नक्षत्र में हो उन नक्षत्रों की संख्या के योग में २७ से भाग देने पर यदि ०।१।४।६।१०।११।१५।१८।१९।२० ये अंक शेष हों तो क्रम से १० योग होते हैं। जैसे शून्य बचे तो वात, १ शेष हो तो मेघ, ४ शेष बचे तो अग्नि, ६ शेष हो तो महीप, १० शेष हो तो चोर, ११ शेष हो तो मरण, १५ शेष रहे तो रोग, १८ शो रहे तो वज्र १९ शेष हो तो वाद और २० शेष हो तो क्षति नाम के दोष होते है। प्रत्येक दोषों के नाम के अनुसार दोषों से भय की सम्भावना होती है। यथा – शून्य शेष हो तो वायु से भय, १ शेष बचे तो मेघ (वर्षा, विजली) से भय, ४ शेष हो

तो अग्नि से भय, इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

यदि सूर्य और चन्द्र नक्षत्र का योग करने पर सम अंक (४,६,१०,१६,१८,२०) आवे तो उसको आधा कर उस संख्या में १४ जोड़े। यदि उक्त योगांक विषम (१,११,१५,१९) प्राप्त हो तो १ जोड़कर आधा करें। तदनन्तर १४ तिरछी रेखायें खींचे। उक्त प्रकार से प्राप्त नक्षत्र को उन रेखाओं में अभिजित सहित लिखें। ग्रह और चन्द्र नक्षत्र के एक रेखा पर पड़ने पर वेध होता है। यह वेध विवाह में वर्जित है।

दश योगों के नाम और उसका फल –

शेष	०	१	४	६	१०	११	१५	१८	१९	२०
भय	वायु	मेघ	अग्नि	महीप	चोर	मरण	रोग	वज्र	वाद	क्षति

विवाह में वर्ण व्यवस्था से लाभ –

गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार वर्ण – व्यवस्था होने से सभी वर्ण अपने - अपने गुण पर कर्म और स्वभाव से युक्त होकर शुद्धता के साथ रहते है। वर्ण – व्यवस्था के ठीक परिपालन से ब्राह्मण के कुल में कोई ऐसा व्यक्ति न रह सकेगा । जो कि क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के गुण - कर्म स्वभाव वाला हों। इसी प्रकार अन्य वर्ण अर्थात् क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी अपने शुद्ध स्वरूप में रहेंगे, वर्ण संकरता नहीं होगी । गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था में किसी वर्ण की निन्दा या अयोग्यता का भी अवसर नहीं रहता। ऐसी अवस्था रखने से मनुष्य उन्नतिशील रहता है, क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि यदि हमारी सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होगी तो वह शूद्र हो जायेगी और और सन्तान भी डरती रहेगी कि यदि यदि हम उक्त चाल चलने वाले विद्यायुक्त न होंगे तो हमे शूद्र होना पड़ेगा । इस प्रकार विचार किया जाय तो वर्णव्यवस्था के अनुरूप रहना ही उत्तम है और गृहस्थ जीवन उत्तम चलेगी और परिवार में सौहार्द्र भी बना रहेगा।

स्त्री - पुरूषों के कर्तव्य - सदा सत्य और प्रिय बोलें, हितकारी वचन बोले। बिना अपराध किसी के साथ वैर या विवाद न करें , हितकारक वचन, चाहे सुनने वालों को बुरा लगे तो भी कह दें। किसी की निन्दा न करें, अपने अवकाश के क्षणों में बुद्धि और धन को वृद्धि करने वाले वेद को पढ़े और पढ़ाया करें।

पंचमहायज्ञ -

गृहस्थ ब्रह्म यज्ञ, देवयज्ञ पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और भूत यज्ञ इन पॉच यज्ञों को अवश्य किया

करे, इससे गृहस्थ जीवन सुखमय होगा तथा परिवार में हर्षोल्लास बना रहेगा ।

उपग्रह दोष विचार –

जिस नक्षत्र पर सूर्य हो, उससे ५,८,१०,१४,७,१९,१५,१८,२१,२२,२३,२४,२५ वें नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो उपग्रह नाम का दोष होता है। यह कुछ और वाह्लिक देश में शुभ कार्यों में निषिद्ध माना गया है।

कुलिक दोष विचार –

सूर्यादिवारों में क्रम से १४,१२,१०,८,६,४,२ मुहूर्त्त कुलिक होता है। दिनमान के १५ वें भाग को मुहूर्त्त कहा गया है। रात्रि में इनमें से एक कम करके अर्थात् क्रमश:१३,११,९,७,५,३,१ वॉ मुहूर्त्त कुलिक होता है तथा शनिवार को अन्तिम अर्थात् १५ वॉ मुहूर्त्त भी निन्दित होता है।

अर्धयाम और कुलिक बोधक सारणी –

वार	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
अर्धयाम	४	७	२	५	८	३	६
दिवाकुलिक	१४	१२	१०	८	६	४	२
रात्रिकुलिक	१३	११	९	७	५	३	१,१५

6.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि लता, पात, युति, वेध, यामित्र, बाणपञ्चक, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्ध तिथि ये विवाह में मुख्य दस दोष कहे गये हैं। उक्त दोषों में ५ से अधिक दोष हो तो विवाह नहीं करना चाहिए, उनमें भी यदि क्रूर ग्रह,बिद्धनक्षत्र, पापग्रहकृत यामित्र और मृत्युबाण हो तो विशेषकर त्याग देना चाहिए। कुछ आचार्य शुभ ग्रह से विद्ध नक्षत्र में और शुभ ग्रहकृत यामित्र दोष में विवाह शुभप्रद कहते हैं। चूँकि दाम्पत्य जीवन में परेशानियों का कारण और भी है। ज्योतिषज्ञ मानते है कि आम तौर पर इस तरह की घटना इसलिए होती है क्योंकि हम बाहरी तौर पर गुणों का ऑकलन करते हैं और कुण्डली में स्थित ग्रहों के गुणों को नजरअंदाज कर जाते हैं। अगर यदि आप चाहते है कि आपका वैवाहिक जीवन प्रेमपूर्ण और सुखमय हो तो इसके लिए विवाह पूर्व कुण्डली मिलान जरूर कर ले कुण्डली मिलान के लिए आप उत्तर भारतीय पद्धति को अपना सकते है। अगर आप दोनों से ऑकलन करना चाहते है, तो यह भी कर सकते हैं।

6.5 पारिभाषिक शब्दावली

लता – विवाह के प्रमुख दस दोषों में एक

एकार्गल – विवाह के दस दोषों में एक

अनिष्टकारक – अनिष्ट करने वाला

मांगलिक – कुण्डली में १,४,७,८,१२ भावों में मंगल की स्थिती का होन मांगलिक होता है।

ज्ञ – बुध

ज्योतिषज्ञ – ज्योतिष को जानने वाला

प्रेमपूर्ण – प्रेम से भरा हुआ

सुखमय – सुख से भरा हुआ

पापग्रह – मंगल, सूर्य, शनि, क्षीणचन्द्रमा

मृतिः – मरण

पापद्वय – दो पापग्रह

स्थिर राशियॉ – वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ

द्विस्वभाव राशियॉ – मिथुन, कन्या, धनु, मीन

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ग
3. ख
4. घ
5. क

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. भारतीय ज्योतिष
4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

6.8 सहायक पाठ्सामग्री

ज्योतिष सर्वस्व

मुहूर्त्तगणपति

मेलापक मीमांसा

मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा

मुहूर्त्तपारिजात

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विवाह के प्रमुख दस दोषों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
2. विवाहोक्त दश योग का वर्णन कीजिए।
3. विवाह के दोषों का निवारण हेतु उपाय लिखिए।

खण्ड - 3

द्विरागमन

इकाई – 1 वधूप्रवेश मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई 'वधूप्रवेश मुहूर्त्त' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। जैसा कि आप सब जानते ही होगें कि वधूप्रवेश का सम्बन्ध विवाह से ही है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने विवाह को समझ लिया है। इस इकाई में आप वधूप्रवेश को समझेंगे।

विवाहोपरान्त कन्या का पति के गृह में प्रवेश को वधूप्रवेश कहा जाता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार वधूप्रवेश मुहूर्त्त कहा गया है।

इस इकाई में आप वधूप्रवेश का विधिवत् अध्ययन करने जा रहे है, आशा है आप इसे ठीक तरह से समझने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ वधूप्रवेश क्या है।
- ❖ वधूप्रवेश का प्रयोजन क्या है।
- ❖ वधूप्रवेश का उद्देश्य एवं महत्व क्या है।
- ❖ वधूप्रवेश हेतु शुभाशभ मुहूर्त्त कौन – कौन है।
- ❖ वधूप्रवेश की रीति क्या है।

1.3 वधूप्रवेश मुहूर्त्त

विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश (डोली उतरना) वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यत: विवाह से अगले दिन ही वधूप्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब तुरन्त प्रवेश की प्रथा न हो तो विवाह के दिन से १६ दिनों के भीतर सम दिनों में या ५,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू – शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है।

१६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पॉच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये।

सम्प्रति लोक में ये बातें कथित तौर पर ही रह गई है। इधर विवाह संस्कार हुआ और उधर डोली

तथा सीधे वर के गृह में प्रवेश हो जाता है, फिर भी दूसरा दिन सम दिन होने से ग्राह्य हैं तथा दोपहर से पूर्व वधूप्रवेश हो जाए तो शास्त्र का विरोध भी नहीं है , लेकिन उसी दिन विवाह होकर, उसी दिन प्रवेश को वर्जित करना चाहिये।

वधूप्रवेश मुहूर्त्त विचार -

समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले ।
शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ।।

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर सम (२,४,६,८,१०,१२,१४,१६) दिनों में और विषम में ५,७,९ वें दिनों में वधूप्रवेश शुभ होता है। यदि १६ दिन के भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मास के विषम (१७,१९,२१,२३,२५,२७,२९ वें) दिनों में एक मास के बाद विषम ३,५,७,९,११ वें मासों में और एक वर्ष के बाद विषम वर्ष ३,५ वर्षों में वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५वें वर्ष के बाद वर्ष मास का विचार नहीं होता है अर्थात् ५वें वर्ष के पश्चात् कभी भी शुभ मुहूर्त्त देखकर वधू प्रवेश कराना चाहिये।

विशेष - विवाह के पश्चात् प्रथम बार पति गृह में प्रवेश को वधूप्रवेश कहते हैं । वधूप्रवेश विवाह से १६ दिन के भीतर प्रत्येक विवाह मास में होती हैं, परनतु १६ दिन के भतर चैत्र – पौष- मलमास – हरिशयन का त्याग करना चाहिये।

अन्य मत में वधूप्रवेश विचार –

त्रिभवविश्वतिथिप्रभवासरान्
नृपदिनेषु विहाय विवाहतः।
अनववेश्मसु नूतनकामिनी
निशि विशेत् स्थिरभेऽथ ततः परम्।।

विवाह संस्कार के बाद वधू का प्रथम पति के साथ पतिगृह में आना वधूप्रवेश है। विवाह का दिन शामिल करते हुए १६ दिनों के भीतर ३,११,१३,१५ वें दिन को छोड़कर अन्य दिनों में वधूप्रवेश शुभ है। वधूप्रवेश बिल्कुल नए गृह में अर्थात् जहॉ गृहप्रवेश के बाद वर के परिवारजनों ने रहना शुरू न किया हो, वहॉ न करें । वधूप्रवेश स्थिर नक्षत्रों में, रात्रि में हो तो विशेष शुभ है । वधूप्रवेश में मंगलवार, व शनिवार न हो तो (कहीं – कहीं बुध भी) ध्रुव, मृदु, क्षिप्र, श्रवण, मूल, मघा, स्वाती नक्षत्र हों तो शुभ होता है।

वधूप्रवेश में नक्षत्र शुद्धि विचार –

ध्रुवक्षिप्रमृदु श्रोत्रवसुमूलमघानिले ।

वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परेः ॥

ध्रुव - क्षिप्र – मृदु संज्ञक नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, और स्वाती इन नक्षत्रों में, रिक्ता (४,९,१४) तिथि और मंगलवार – रविवार को छोड़कर अन्य तिथि –वारों में वधूप्रवेश होता है। अन्य आचार्य के मत से बुधवार को भी प्रवेश को वर्जित किया गया है।

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधू: शुचौ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधो तातगृहे विवाहतः ॥

विवाह के पश्चात् प्रथम ज्येष्ठ मास में यदि स्त्री पतिगृह में रहे तो पति के ज्येष्ठ भाई को नाश करती है। यदि प्रथम मलमास में रहे तो पति को, प्रथम आषाढ़ में पतिगृह में रहे तो सास को, पौष में रहे तो श्वसुर को और प्रथम क्षयमास में रहे तो अपने को नाश करती है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् प्रथम चैत्र में यदि स्त्री पिता के गृह में रह जाय तो पिता को मारती है।

विशेष - इससे सिद्ध होता है कि विवाह के पश्चात् चैत्र में पिता के गृह में रह जाना, तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ पौष, मलमास – क्षयमास में पतिगृह में रहना वधूप्रवेश – यात्रा में शुभ नहीं होता है। अत: व्यावहारिक रूप में वधूप्रवेश के पश्चात् वर्जित समय को ध्यान देना आवश्यक है।

वधूप्रवेश मुहूर्त निर्णय करते समय निम्नलिखित स्थितियों का चयन करें-

शुभ मास - वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, पौष, माघ, फाल्गुन व मार्गशीर्ष।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु व शुक्र।

शुभ तिथि - 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उफा., हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूला, उषा., उभा., रेवती।

शुभ लग्न - सप्तम में सभी ग्रह अनिष्टकारक कहे गए हैं। लग्न में 3, 6, 7, 9 व 12वीं राशि का नवांश श्रेष्ठ कहा गया है। जब जन्म राशि जन्म लग्न से आठवीं या बारहवीं न हो।

विवाह लग्न से सूर्यादि ग्रहों के शुभ भाव अधोलिखित हैं :

सूर्य - 3, 6, 10, 11, 12वें भाव में। चन्द्र - 2, 3, 11वें भाव में।

मंगल - 3, 6, 11वें भाव में।

बुध व गुरु - 1, 2, 3, 4, 6, 9, 10, 11वें भाव में।

शुक्र - 1, 2, 4, 5, 9, 10, 11वें भाव में।

शनि, राहु- केतु - 3, 6, 8, 11वें भाव में।

टिप्पणी - वधू प्रवेश नवीन गृह में सर्वथा त्याज्य है। विषम दिनों, विषम मासों या विषम वर्षों में वर्जित है। इसी तरह भद्रा, व्यतिपात, गुरु- शुक्रास्त, क्षीण चन्द्र भी वर्जित है।

नव वधू द्वारा पाकारम्भ मुहूर्त

ससुराल में आने के बाद वधू द्वारा प्रथम बार रसोई बनवाई जाती है। इस कार्य के लिए ही इस मुहूर्त का विचार किया गया है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में नव वधू का पाकारम्भ (पहली बार रसोई बनाना) करना शुभ होता है।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु व शनि।

शुभ तिथि - (कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तरात्रय, विशाखा, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

मुहूर्त का अर्थ है किसी कार्य विशेष को करने के लिए सही समय का चुनाव। सही समय में प्रारंभ किया गया कार्य शीघ्र ही पूर्ण होता है और सफल रहता है इसके विपरीत अनुचित समय में प्रारम्भ किया गया कार्य समय पर पूर्ण नहीं हो पाता और उसमें असफलता की सम्भावना भी अधिक बनी रहती है। उचित मुहूर्त बिना किये गये कार्य में विभिन्न विघ्न आते हैं, अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती हैं और कार्य पूर्ण नहीं हो पाता है। इसीलिए हमारे पूर्वजों नें मुहूर्त की व्यवस्था की, ताकि उचित समय में किसी कार्य विशेष को प्रारम्भ किया जा सके। समय और ग्रहों का प्रभाव जड़, चेतन, मानव, पशु, पक्षी, प्रकृति आदि सब पर पड़ता है। संसार का कोई ऐसा पदार्थ नहीं, जिस पर समय अपना प्रभाव न दिखाता हो, समय के वशीभूत हुए बड़े- बड़े पहाड़ टूटकर मिट्टी में तब्दील हो जाते हैं, बड़े- बड़े गड्ढे भरकर समतल हो जाते हैं।

अतएव मनुष्य को प्रत्येक कार्य शुभ समय में करने का प्रयत्न करना चाहिये। शेष सुख – दुःख, लाभ – हानि, जीवन – मरण तो सब विधि के हाथ में ही होता है।

वस्राभूषण धारण विचार –

हस्त, अनुराधा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, चित्रा,तीनों उत्तरा, पुनर्वसु , रोहिणी नक्षत्रों में शुक्र,बुध,गुरू वारों में स्थिर लग्न में नए गहने पहनने चाहिये।

क्षिप्र, मृदु, ध्रुव व चर नक्षत्रों में शुभ वार, शुभ लग्नों में या उत्सव में, पति की इच्छा से नए वस्राभूषण पहनने चाहिये।

बोध प्रश्न

१. विवाह के पश्चात् वधू का पति के गृह में प्रवेश कहलाता है –

क. द्विरागमन ख. वधूप्रवेश ग. अग्न्याधान घ. पाणिग्रहण

२. विवाह के दिन से कितने दिनों के भीतर वधूप्रवेश करना चाहिये।

क. १५ दिनों के ख. १८ दिनों के ग. १६ दिनों के घ. २० दिनों के

३. मलमास में वधूप्रवेश करना होता है –

क. शुभ ख. अशुभ ग. दोनों घ. कोई नहीं

४. वधूप्रवेश के लिये कौन सा दिन शुभ होता है –

क. मंगलवार ख. गुरूवार ग. रविवार घ. शनिवार

५. विवाह के पश्चात् प्रथम ज्येष्ठ मास में यदि स्त्री पतिगृह में रहे तो किसका नाश करती है।

क. पति का ख. सास का ग. पति के ज्येष्ठ भाई का घ. कोई नहीं

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश (डोली उतरना) वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यत: विवाह से अगले दिन ही वधू प्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब तुरन्त प्रवेश की प्रथा न हो तो विवाह के दिन से १६ दिनों के भीतर सम दिनों में या ५,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू – शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है। १६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पॉच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

वधूप्रवेश – वधू का पति के गृह में प्रवेश

शुक्रास्त – शुक्र का अस्त होना

व्यतीत – बीता हुआ

क्षयमास – जिस चान्द्र मास में सूर्य की दो संक्रान्ति हो

पश्चात् – बाद में

यथेष्टम् – जैसी इच्छा हो

सम – बराबर

भूमि तत्व राशियॉ – वृष, कन्या, मकर

वायु तत्व राशियॉ – मिथुन, तुला, कुम्भ

जल तत्व राशियॉ – कर्क, वृश्चिक, मीन

चर राशियॉ – मेष, कर्क , तुला , मकर

स्थिर राशियॉ – वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ

द्विस्वभाव राशियॉ – मिथुन, कन्या, धनु, मीन

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. ग
3. ख
4. ख
5. ग

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. भारतीय ज्योतिष
4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

1.8 सहायक पाठ्सामग्री

विवाह वृन्दावन

मुहूर्त्तचिन्तामणि - पीयूषधारा

मुहूर्त्तगणपति

मेलापक मीमांसा

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वधूप्रवेश मुहूर्त्त लिखिए।
2. सम्प्रति वधूप्रवेश की महत्ता को दर्शाइए।

इकाई – 2 पितृगृह निवास में विशेष

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 पितृगृह निवास में विशेष

  बोध प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के तृतीय खण्ड की द्वितीय इकाई **'पितृगृह निवास में विशेष'** नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इस इकाई के पूर्व आपने वधूप्रवेश मुहूर्त्त का अध्ययन कर लिया है , इस इकाई में आप कन्या का पितृगृह निवास में विशेष का अध्ययन करेंगे।

कन्या का पति के गृह से पिता के गृह में निवास करने पर क्या विशेष होता है, उसे पितृगृह निवास में विशेष की संज्ञा दी गई हैं।

इस इकाई में आप पितृगृह निवास में विशेष को समझने जा रहे है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ पितृगृह निवास से क्या तात्पर्य है।
- ❖ पितृगृह निवास में क्या विचार किया जाता है।
- ❖ पितृगृह निवास में विशेष क्या होता है ।
- ❖ पितृगृह निवास में विशेष क्या उपयोग है।
- ❖ पितृगृह निवास में क्या - क्या होता है।

2.3 पितृगृह निवास में विशेष

पितृगृह निवास से तात्पर्य प्रथम समय में प्रसवकाल की अवस्था में कन्या का पति के गृह से पिता के गृह में प्रवेश से है। जब कन्या पति के गृह से पिता के गृह में प्रवेश करती है, उस समय ज्योतिष दृष्ट्या क्या – क्या विचार किया जाता है, इसका ज्ञान आप प्रस्तुत इकाई में करने जा रहे है। सर्वप्रथम पिता के गृह जाने का मुहूर्त्त क्या है, इसको समझते है -

<u>पितृ गृह जाने का मुहूर्त</u>

प्रसव के पूर्व जब स्त्री पति गृह से पितृ गृह जाती है या असमय पितृगृह जाए तो इस मुहूर्त को उपयोग में लाना चाहिए।

शुभ तिथि - 1(कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 7, 10 (शुक्लपक्ष)।

शुभ वार - सोम, गुरु, शुक्र।

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा व रेवती।

लग्न - 2, 3, 4, 6, 7 व 9।

टिप्पणी - भद्रा, व्यतिपात, रिक्ता तिथि को त्याज्य दें एवं पत्नी के चन्द्र बल को महत्ता देने के साथ-साथ लग्न शुद्धि भी देखनी चाहिए।

आम तौर पर भी यात्रा के लिए शुभाशुभ मुहूर्त्तों का जानना चाहिये, जिनका विवरण निम्न है -

यात्रा मुहूर्त विचार

यात्रा से ही मानव का सामाजिक व्यवहार चलता है। वस्तुत: शुभ ग्रह की दशा में तथा शुभ मुहूर्त या शकुन में यात्रा करने से, बिना अधिक परिश्रम किये कार्य की सिद्धि होती है जबकि अशुभ मुहूर्त या शकुन में यात्रा करने से हानि होती है। गुरु या शुक्र का अस्त होना यात्रारम्भ के लिए शुभ नहीं माना जाता है। यदि यात्रा आवश्यक हो तो गुरु व शुक्र की उपासना के बाद यात्रा करनी चाहिए।

तिथि - रिक्ता, अमावस, पूर्णिमा, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी और शुक्ल प्रतिपदा को छोड़कर शेष सभी तिथियां यात्रा हेतु शुभ मानी गयी हैं। अपनी राशि के अनुसार घात तिथियों को भी त्याज्य देना चाहिए।

वार - दिशाशूल त्याज्य कर समस्त वार प्रशस्त हैं।

शुभनक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती।

मध्य नक्षत्र - रोहिणी, तीनों उत्तरा, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, मूला और शतभिषा।

वर्जित नक्षत्र - भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाति और विशाखा नक्षत्र निन्द्य हैं। पंचक एवं पड़वा में यात्रा कदापि नहीं करनी चाहिए। दिशाशूल विचार सोमवार व शनिवार को पूर्व, गुरुवार को दक्षिण, रविवार व शुक्रवार को पश्चिम, मंगलवार व बुधवार को उत्तर दिशा में दिशाशूल समझकर यात्रा का त्याज्य करना चाहिए। अन्यथा हानि उठानी पड़ सकती है। समय शूल विचार प्रात:काल में पूर्व, मध्याह्न में दक्षिण, गोधूलि में पश्चिम एवं रात्रि में उत्तर दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए। चन्द्र वास विचार मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में तुला, मिथुन और कुंभ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में कर्क, वृश्चिक और मीन का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है। चन्द्र वास फल इस प्रकार है : सम्मुख चन्द्रमा धनलाभ कारक दक्षिण चन्द्रमा सुख- सम्पत्ति देने वाला पृष्ठ चन्द्रमा शोक- संताप कारक वाम चन्द्रमा धन हानि कारक जन्म राशि से 1, 3, 6, 7, 10 व 11वें चन्द्र हो तो शुभ होता है। इसके अतिरिक्त शुक्लपक्ष में 2, 5 व 9वें चन्द्रमा हो तो भी शुभ होता है।

ससुराल से पिता के घर में जाकर फिर से पति- परमेश्वर के घर में आने का नाम द्विरागमन है। यह भी शुभ समय में करने श्रेष्ठ होता है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में द्विरागमन शुभ

होता है।

शुभ वर्ष - 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 15 व 17

शुभ मास - वैशाख, मार्गशीर्ष एवं फाल्गुन।

शुभ वार - रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि - 1, 2, 3, 5, 7, 8, 10, 11, 13 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, पुनर्वसु, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण, चित्रा, स्वाति, रेवती, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढा, अश्विनी, मूला,हस्त व उत्तरात्रय।

शुभ लग्न - 3, 4, 7, 9 , 10 व 12वीं राशि।

विशेष - शनि और मंगलवार, 4, 6, 9, 12, 14, 30 तिथियॅा त्याज्य हैं।

ज्योतिष शास्त्रानुसार कुछ ऐसे मुहूर्त्त होते हैं, जो सर्वोपयोगी होते हैं, अत: उन मुहूर्त्तों का सहारा लेकर अपरिहार्य परिस्थिति में कार्य करना चाहिए। वो मुहूर्त्त हैं -

सर्वोपयोगी मुहूर्त

यह मुहूर्त प्रत्येक शुभ कार्यों में उपयोगी होता है। इसका उपयोग सर्वत्र किया जा सकता है।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि - 1(कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 8, 9, 10, 12, 13, 14, 15 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, आश्लेषा, पुनर्वसु, उत्तरात्रय, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

शुभ लग्न - लग्न शुद्धि अवश्य करें।

विशेष - चन्द्र बल का एवं गोचर विचार के अतिरिक्त जातक की दशा- अन्तर्दशा भी देख लेनी चाहिए।

पितृगृह निवास में विशेष रूप में शुक्र व गुरू का ही विचार किया जाता है, अत: तत्सम्बन्धित जानकारी यहॅा प्रस्तुत किया जा रहा है -

शुक्र व गुरू का बाल्यवृद्धत्व -

पुर: पश्चाद् भृगोबाल्यं त्रिदशाहं च वार्द्धकम् ।
पक्ष पञ्चदिनं ते द्वे गुरो: पक्षमुदाहृते ।।
ते दशाहं द्वयो: प्रोक्ते कैश्चित्सप्तदिनं परै: ।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्द्धाहं च त्र्यहं विधो: ।।

शुक्र पूर्व दिशा में उदित होने के बाद तीन दिन तक बाल्यावस्था में रहता है। इस अवधि में शुक्र

अपने पूर्ण रूप से फल देने में असमर्थ होता है। इसी प्रकार जब वह पश्चिम दिशा में होता है १० दिन तक बाल्य काल की अवस्था में होता है। शुक्र जब पूर्व दिशा में अस्त होता है तो अस्त होने से पहले १५ दिन तक फल देने में असमर्थ होता है व पश्चिम में अस्त होने से ५ दिन पूर्व तक वृद्धावस्था में रहता है। इन सभी समयों में शुक्र की शुभता प्राप्त नहीं हो पाती। गुरू किसी भी दिशा में अस्त या उदित हो तो दोनों ही परिस्थितियों में १५-१५ दिनों के लिए बाल्यकाल में वृद्धावस्था में होते है। उपरोक्त दोनों ही योगों में विवाह कार्य सम्पन्न करने का कार्य नहीं किया जाता है।

चन्द्र का शुभाशुभ विचार – चन्द्र को अमावस्या से तीन दिन पहले व तीन दिन बाद तक बाल्य काल में होने के कारण इस समय को विवाह काल के लिए छोड़ दिया जाता है। ज्योतिष शास्त्र में यह मान्यता है कि शुक्र, गुरू व चन्द्र इनमें से कोई भी ग्रह बाल्यकाल में हो तो वह अपने पूर्ण फल देनें की स्थिति में न होने के कारण सुफल नहीं देते है और इस अवधि में विवाह कार्य करने पर इस कार्य के शुभता में कमी होती है।

वृहस्पति कन्या की राशि से नवम पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, दशम, तृतीय षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, एवं द्वादश राशि में अशुभ होता है।

बोध प्रश्न –

१. पतिगृह से पितृगृह जाने हेतु निम्न में कौन सा वार शुभ होता है –
   क. मंगल ख. गुरू ग. शुक्र घ. रवि
२. निम्न में यात्रा हेतु प्रशस्त नक्षत्र माना जाता है-
   क. भरणी ख. कृत्तिका ग. रोहिणी घ. मृगशिरा
३. सामान्य तौर पर यात्रा में कौन सा वार त्याज्य हैं -
   क. बुध व शुक्र ख. शनि और मंगल ग. गुरू एवं शनि घ. मंगल और रवि
४. शुक्र जब पश्चिम दिशा में होता है, तब कितने दिन तक बाल्यावस्था में रहता है –
   क. ८ ख. ९ ग. १० घ. ११
५. वृहस्पति कन्या की राशि से नवम, पंचम में होता है –
   क. शुभ ख. अशुभ ग. दोनों घ. कोई नहीं

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि पितृगृह निवास से तात्पर्य कन्या का पति के गृह

से पिता के गृह में प्रवेश से है। जब कन्या पति के गृह से पिता के गृह में प्रवेश करती है, उस समय ज्योतिष दृष्ट्या क्या – क्या विचार किया जाता है। विशेष रूप में जब कन्या मॉ बनने वाली होती है तब प्रसव के पूर्व वह पति गृह से पितृ गृह जाती है। उस समय पिता के गृह जाने पर इन मुहूर्तों को उपयोग में लाना चाहिए। शुभ तिथि - 1(कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 7, 10 (शुक्लपक्ष)। शुभ वार - सोम, गुरु, शुक्र। शुभ नक्षत्र - अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा व रेवती। लग्न - 2, 3, 4, 6, 7 व 9। पति गृह में विशेष में यह ध्यान रखना चाहिये कि उपरोक्त वार, तिथि, नक्षत्र व लग्न हो तथा शुक्र का विचार भी आवश्यक होता है। साथ ही यात्रा के लिये चन्द्र एवं राहु का विचार भी कर लेना चाहिये।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

प्रसवकाल – स्त्री के बच्चें होने का समय

सर्वप्रथम – सबसे पहले

पितृगृह – पिता का घर

शुभाशुभ – शुभ और अशुभ

दिशाशूल – दिशा में यात्रा सम्बन्धित अशुभ

प्रशस्त – कल्याणकारी

घात – अशुभ

समस्त – सभी

यात्रारम्भ – यात्रा का आरम्भ

पंचक – धनिष्ठा आदि पॉच नक्षत्र

द्विरागमन – । प्रथम बार पति गृह से पितृगृह में आकर पुन: पति गृह में वधू का आगमन 'द्विरागमन' कहा जाता है।

सर्वत्र – सभी जगह

उत्तरात्रय – तीनों उत्तरा संज्ञक नक्षत्र

वृद्धावस्था – बुढ़ापे की अवस्था

बाल्यावस्था - बाल अवस्था

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग

2. घ

3. ख

4. ग

5. क

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार

2. मुहूर्त्तचिन्तामणि

3. भारतीय ज्योतिष

4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

2.8 सहायक पाठ्सामग्री

1. विवाह वृन्दावन

2. मुहूर्त्तचिन्तामणि - पीयूषधारा

3. मुहूर्त्तगणपति

4. मेलापक मीमांसा

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पितृगृह में प्रवेश का मुहूर्त्त लिखिए।

2. पितृगृह में प्रवेश हेतु मुख्य रूप से क्या क्या विचार किया जाता है। स्पष्ट कीजिये।

इकाई – 3 द्विरागमन मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई 'द्विरागमन मुहूर्त्त' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है । इससे पूर्व की इकाईयों में आपने वधूप्रवेश मुहूर्त्त एवं पितृगृह निवास में विशेष का अध्ययन कर लिया है, इस इकाई में आप द्विरागमन मुहूर्त्त का अध्ययन करने जा रहे हैं ।

द्विरागमन से अर्थ द्वितीय बार आगमन से है, अर्थात् पति के गृह से कन्या का द्वितीय बार पिता के घर में जाने की क्रिया द्विरागमन कहलाती है।

इस इकाई में आप द्विरागमन मुहूर्त्त का सम्यक् अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ द्विरागमन क्या है।
- ❖ द्विरागमन हेतु शुभ मुहूर्त्त क्या है।
- ❖ द्विरागमन का उद्देश्य एवं महत्व क्या है।
- ❖ द्विरागमन में क्या क्या होता है।
- ❖ सम्प्रति द्विरागमन का क्या महत्व है।

3.3 द्विरागमन मुहूर्त्त

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्यशुद्धियोगत: शुभग्रहस्य वासरे।
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके द्विरागमं लघुध्रुवे चरेस्रपे मृदूडुनि ।।

विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र) के दिन में, मिथुन – मीन – कन्या – तुला – और वृष लग्न में, लघु संज्ञक –ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन (विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह का यात्रा) कराना चाहिये।

द्विरागमन वधूप्रवेश का ही अंग है। वधूप्रवेश के ३ भेद हैं -

१. नूतन वधूप्रवेश २. सामान्य वधूप्रवेश ३. विलम्बित वधूप्रवेश

विवाह के बाद १६ दिन के भीतर पिता के गृह से पतिगृह में प्रवेश को नूतन वधू प्रवेश कहते है।

विवाह के पश्चात् एक वर्ष के भीतर मार्गशीर्ष , फाल्गुन, वैशाख क्रम से पतिगृह में प्रवेश को सामान्य वधूप्रवेश कहते हैं । इसमें सम – विषम मासों – दिनों का विचार एवं शुक्र का विचार नहीं होता है। जैसे -

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके ।

वधूप्रवेशे मांगल्ये न मौढ्यं गुरू – शुक्रयो: ।।

इस वचनानुसार सामान्य वधूप्रवेश में गुरू – शुक्र के मौढ्य अस्तादि का विचार आवश्यक नहीं होता हैं । व्यवहार में लोग इसे भी प्रथम वर्षीय द्विरागमन कहते हैं । इसमें पिताके गृह से चन्द्रतारानुकूलित यात्रा विचार सहित प्रस्थान के साथ पतिगृह में प्रवेश का मुहूर्त्त देखा जाता है। विवाह के पश्चात् तृतीय – पंचम विषम वर्ष में पिता के गृह से पतिगृह के लिये स्त्री के प्रस्थान को विलम्बित वधूप्रवेश कहा जाता है। इसमें गुरू – शुक्र के अस्तादि में शुक्र विचार की प्रधानता होती है। सम्मुख दक्षिण शुक्र का विचार प्रधान होता है। आवश्यक पक्ष में शुक्रान्ध - नक्षत्र में यात्रा मुहूर्त्त देखकर पतिगृह में द्विरागमन होता है। शुक्रान्ध नक्षत्र – रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, और मृगशिरा ये ६ नक्षत्र है। इसमें मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख इन तीन मासों में शुक्ल पक्ष, कृष्णपक्ष की पंचमी तक विहित तिथि – वार - नक्षत्र आदि विचार आवश्यक होता है।

दूसरे शब्दों में, ससुराल से पिता के घर में जाकर फिर से पति- परमेश्वर के घर में आने का नाम द्विरागमन है। यह भी शुभ समय में करने श्रेष्ठ होता है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में द्विरागमन शुभ होता है।

शुभ वर्ष - 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 15 व 17

शुभ मास - वैशाख, मार्गशीर्ष एवं फाल्गुन।

शुभ वार - रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि - 1, 2, 3, 5, 7, 8, 10, 11, 13 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, पुनर्वसु, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण, चित्रा, स्वाति, रेवती, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढा, अश्विनी, मूला,हस्त व उत्तरात्रय।

शुभ लग्न - 3, 4, 7, 9 , 10 व 12वीं राशि।

टिप्पणी - शनि और मंगलवार, 4, 6, 9, 12, 14, 30 तिथियां त्याज्य हैं।

प्रथम समागम मुहूर्त

अधोलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में वर- वधू का परस्पर प्रथम समागम करना शुभ होता है।

शुभ वार - रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि - 1(कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 7, 9, 13, 15 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - इन नक्षत्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है

- पूर्वाद्ध भोगी नक्षत्र - रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा।
- मध्य भोगी नक्षत्र - आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा।
- उत्तरार्ध भोगी नक्षत्र - ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद।

शुभ लग्न - 1, 3, 5, 7, 9, 11वीं राशि।

विशेष - पूर्वाद्ध भोगी नक्षत्र में स्त्री- पुरुष का प्रथम समागम होने पर स्त्री पति को प्रिय होती है, मध्य भोगी नक्षत्र में हो तो परस्पर प्रीति होती है और उत्तरार्ध भोगी नक्षत्र में हो तो पति पत्नी को प्रिय होता है।

कुछ विद्वानों ने मुहूर्त्त ग्रन्थों के द्विरागमन प्रकरण में नवोढ़ा शब्द के प्रयोग के कारण द्विरागमन को वधूप्रवेश सिद्ध करने का प्रयास किया है। कभी – कभी ऐसा देखा जाता है कि विवाहोपरान्त वधू पतिगृह चली जाती है तथा दूसरे ही दिन पुन: पितृगृह में वापस आ जाती है। अनन्तर कुछ समय बाद पुन: पतिगृह में जाती है, (यही द्विरागमन होता है।) ऐसी स्थिति में वधू को नवोढा कहना किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं है। नवोढ़ा का अर्थ नवीनोद्वाहिता सद्य: विवाहिता ही होता है। केवल नवोढ़ा शब्द के प्रयोग से द्विरागमन को वधूप्रवेश नहीं कहा जा सकता है। निम्नलिखित श्लोक से भी द्विरागमन की पृथक् सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है -

विवाहे गुरूशुद्धिः स्यात् शुक्रशुद्धिर्द्विरागमने ।
त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे ।।

अर्थात् कन्या के विवाह में गुरू, शुद्धि द्विरागमन में शुक्र शुद्धि, तृतीय यात्रा में राहु की शुद्धि तथा चतुर्थ एवं इसके बाद की यात्राओं में केवल चन्द्रशुद्धि का ही विचार करना चाहिये।

अत: निष्कर्ष यही है कि प्रथम बार पतिगृह में जाना वधूप्रवेश , द्वितीय बार जाना द्विरागमन होता है।

अपि च –

ओजाब्दमासेऽहनि कार्यमेतत्
पंचाब्दतोऽग्रे नियमो न तद्वत्।
विवाहभाध्रि श्रुतियुग्मचित्रा
गुरूडुभी रिक्तकुजार्क हीनैः।।

यदि द्विरागमन (गौना) अर्थात् पतिगृह में दूसरी बार आना विवाह के तुरन्त बाद न हुआ तो विवाह से विषम वर्षों , विषम मासों में करना चाहिए ।

गौना पॉचवें वर्ष से आगे होना चाहिए यह नियम युक्तियुक्त नहीं है।

द्विरागमन के लिए विवाह के सभी नक्षत्र, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, पुष्य शुभ हैं। रिक्ता तिथि व मंगल शनिवार को वर्जित करना चाहिए।

द्विरागमो मेषघटालिसंस्थे
सूर्ये मृदुक्षिप्रचलाचलर्क्षे।
मूले बुधेज्यास्फृजिनां दिनेंगे
रवीज्यशुद्धौ विषमेऽब्द इष्टः॥

मेष, वृश्चिक, कुम्भ के सूर्य में, मृदु क्षिप्र, लघु व स्थिर नक्षत्र और मूल में, बुध, गुरू, शुक्र के वार व लग्नों में, सूर्य व गुरूबल की शुद्धि में, विषम वर्ष में गौना करना चाहिए।

बोध प्रश्न –

१.द्विरागमन हेतु शुभ तिथि है –

क. ९ ख. ४ ग. १४ घ. ११

२. द्विरागमन में विचार किया जाता है –

क. गुरू शुद्धि ख. शुक्र शुद्धि ग. रवि शुद्धि घ. चन्द्र शुद्धि

३. 'घट' का अर्थ है –

क. वृश्चिक ख. कुम्भ ग. तुला घ. मीन

४. वधूप्रवेश के कितने भेद है –

क. ४ ख. २ ग. ६ घ. ३

५. द्विरागमन हेतु शुभ वार हैं –

क. मंगल ख. शनि ग. गुरू घ. कोई नहीं

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र) के दिन में, मिथुन –मीन –

कन्या – तुला – और वृष लग्न में, लघु संज्ञक –ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन (विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह का यात्रा) कराना चाहिये। द्विरागमन वधूप्रवेश का ही अंग है। वधूप्रवेश के ३ भेद हैं - नूतन वधूप्रवेश २. सामान्य वधूप्रवेश ३. विलम्बित वधूप्रवेश। विवाह के बाद १६ दिन के भीतर पिता के गृह से पतिगृह में प्रवेश को नूतन वधू प्रवेश कहते है। किन्तु गम्भीरता से अध्ययन करने पर बोध होता है कि द्विरागमन एवं वधूप्रवेश में अन्तर है। प्रथम बार पतिगृह में जाना वधूप्रवेश , तथा द्वितीय बार जाना द्विरागमन होता है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

इज – वृहस्पति

घट – कुम्भ राशि

अलि – वृश्चिक राशि

द्विरागमन – प्रथम बार पति गृह से पितृगृह में आकर पुन: पति गृह में वधू का आगमन 'द्विरागमन' कहा जाता है।

नूतन – नया

शुक्रान्ध – शुक्र का अस्त होना

जीर्ण – पुराना

समागम – बराबर रूप से मिलन

निम्नलिखित – नीचे लिखा हुआ

परस्पर – एक दूसरे के

विभाजित – बॅाटना

प्रीति – प्रेम

अनन्तर – बाद में

विवाहोपरान्त – विवाह के पश्चात्

गौना - द्विरागमन

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. घ
2. ख

3. ख

4. घ

5. ग

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार

2. मुहूर्त्तचिन्तामणि

3. भारतीय ज्योतिष

4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

3.8 सहायक पाठ्सामग्री

विवाह वृन्दावन

मुहूर्त्तचिन्तामणि - पीयूषधारा

मुहूर्त्तगणपति

मेलापक मीमांसा

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्विरागमन से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये।

2. प्रथम समागम मुहूर्त्त लिखिये।

इकाई – 4 द्विरागमन में शुक्र विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0जे0वाई – 302 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई 'द्विरागमन में शुक्र विचार' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने द्विरागमन मुहूर्त्त को समझ लिया है, आइए इस इकाई में द्विरागमन में शुक्र का विचार से सम्बन्धित इकाई का अध्ययन करते हैं द्विरागमन में शुक्र का विचार मुख्य रूप से किया जाता है। अत: इस इकाई में ज्योतिषोक्त द्विरागमन में शुक्र का विचार का वर्णन किया जा रहा है।

इस इकाई में आप द्विरागमन में शुक्र का विचार का अध्ययन करने जा रहे है, आशा है आप इसे भली – भॉति समझने का प्रयास करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेगें कि –

- ❖ द्विरागमन में शुक्र विचार क्यों महत्वपूर्ण है ।
- ❖ द्विरागमन में शुक्र विचार का क्या महत्व है ।
- ❖ शुक्र विचार का उद्देश्य एवं महत्व क्या है।
- ❖ द्विरागमन में शुक्र विचार से क्या होता है।
- ❖ शुक्र विचार नहीं करने से क्या हो सकता है।

4.3 द्विरागमन में शुक्र विचार

प्रथमतया यहॉ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कुछ विद्वानों के मत में वधूप्रवेश एवं द्विरागमन एक ही है, लेकिन ऐसा नहीं है। प्रथम बार पति गृह से पितृगृह में आकर पुन: पति गृह में वधू का आगमन 'द्विरागमन' कहा जाता है। द्विरागमन में ही शुक्र दोष का विचार किया जाता है, वधूप्रवेश में नहीं। द्विरागमन के लिए मुहूर्त्तचिन्तामणि में कहा गया है – ''चरेदथौजहायने....'' अर्थात् विषम वर्षों में ही द्विरागमन करना चाहिये। इसके लिए भी कोई सीमा नहीं है। जब कभी भी विषम वर्ष में द्वितीय वधूप्रवेश होगा उसे द्विरागमन कहेंगे। यह स्पष्ट मत है। शुक्र विचार -

गुर्विण्या बालकेनापि नववध्या द्विरागमे।
पदमेकं न गन्तव्यं शुक्रे सम्मुखदक्षिणे ॥
पौष्णादिवह्निभाद्यंघ्रि यावत्तिष्ठति चन्द्रमा।
तावच्छुक्रो भवेदन्ध: सम्मुखे दक्षिणे हितम् ॥

गर्भिणी और बालक के यात्रा में तथा वधू के द्विरागमन में सम्मुख और दक्षिण शुक्र त्याज्य है। रेवती से कृत्तिका प्रथम चरणपर्यन्त, मतांतर से मृगशिरा नक्षत्र पर्यन्त जब तक चन्द्रमा रहते हैं तब तक शुक्र अन्धा होता है। उपरोक्त कार्यों में अन्ध शुक्र सम्मुख और दाहिने शुभकर होता है।

द्विरागमन में सम्मुख शुक्र दोष –

> **दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्गच्छेयुर्न हि शिशुगर्भिणीनवोढाः।**
> **बालश्चेद्व्रजति विपद्यते नवोढा चेद्वन्ध्या भवति च गभिर्णी त्वगर्भा॥**

शुक्र यदि सम्मुख और दाहिने हो तो बालक – बालिका, नवविवाहिता, और गर्भवती स्त्री को यात्रा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शुक्र के सम्मुख और दाहिने रहने पर यदि बालक जाय तो बालक की मृत्यु हो जाती है। नवविवाहिता (नवोढ़ा) वन्ध्या हो जाती है और गर्भिणी का गर्भ नष्ट हो जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि शुक्र के दक्षिण सम्मुख रहने पर किसी भी स्त्री का द्विरागमन शुभ नहीं है।

विशेष - जब शुक्र सूर्य से आगे रहता है तो सन्ध्या में पश्चिम में उदित होता है उस समय पश्चिम की यात्रा में शुक्र सम्मुख और दक्षिण की यात्रा में दक्षिण होता है। अत: पूर्व उत्तर की यात्रा में पृष्ठ एवं वाम शुक्र होते हैं । इसी प्रकार जब शुक्र, सूर्य से पीछे रहता है, तो प्रात:काल पूरब में उदित रहता है उस समय पूर्व उत्तर की यात्रा में शुक्र सम्मुख दाहिना अशुभ होता है, किन्तु पश्चिम – दक्षिण की यात्रा में शुक्र पृष्ठ – वाम होने से शुभ है। यह शुक्र का विचार तृतीयादि विषम वर्ष के द्विरागमन, नवविवाहिता तथा गर्भिणी की यात्रा में करना आवश्यक है।

बादरायण जी का मत –

> **अस्तंगते भृगो: पुत्रे सम्मुखमागते । नष्टे जीवे निरंशौ वा नैव सञ्चालयेद्वधूम् । गर्भिण्या बालकेनापि नववध्या द्विरागमे। पदमेकं न गन्तव्यं शुक्रे सम्मुखदक्षिणे गुर्विणी स्रवते गर्भ बालो वा मरणं व्रजेत् । नवा वधूर्भवेद्वन्ध्या शुक्रे सम्मुखदक्षिणे॥**

अर्थात् यदि शुक्र: पूर्वस्यामुदित: पूर्वदिशि: गन्तु: सम्मुख एव, पश्चिमे गन्तु: पृष्ठे , दक्षिणे गन्तुर्वामे, उत्तरेगन्तु: दक्षिणे स्यात् तदा पूर्वोत्तरे दिशौ न गच्छेत्। किन्तु पश्चिमदक्षिणे दिशौ गच्छेत्। यदि पश्चिमायामुदित: शुक्र: पश्चिमां गन्तु: सम्मुख एव, दक्षिणां गन्तु: दक्षिण: , पूर्वां गन्तुं पृष्ठे, उत्तरां गन्तुर्वाम: तदा पश्चिमदक्षिणे दिशौ न यायात्। किन्तु पूर्वोत्तरे दिशौ गच्छेत्। अपि च -

> **पृष्ठे भृगौ पुत्रवती प्रयाणे कान्तां कुलीनां सुभगां करोति।**
> **अग्रे सुखं वै विदधाति शुक्रो वैधव्यशोक: खलु नास्ति शुक्रे॥**

सम्मुख शुक्र का परिहार –

नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुधतीर्थयात्रयो:।
नृपपीडने नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्न हि ।।

नगर के प्रवेश में, किसी विषय (बिमारी या उत्पात) आदि के उपद्रव में, विवाह में, देवता का दर्शन, और तीर्थ की यात्रा में, राजा से पीडित होकर जाने में, और नूतन वधूप्रवेश में , सम्मुख भी शुक्र दोष कारक नहीं होता है। तात्पर्य है कि उपर्युक्त समय में शुक्र दोष का विचार नहीं करना चाहिए। यहॉ नववधूप्रवेश का अर्थ है कि विवाह के पश्चात् एक वर्ष के भीतर स्त्री पितागृह से पतिगृह की यात्रा करे तो सम्मुख दक्षिण शुक्र का दोष नहीं होगा।

सम्मुख शुक्र का विशिष्ट अपवाद -

पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसम्भव: स्त्रीणां न दोष: प्रतिशुक्रसम्भव:।
भृग्विगिंरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां भरद्वाजमुने: कुले तथा ।।

यदि पिता के गृह में ही स्त्रियों के कुच और रजोदर्शन हो गये हों तो उनके तृतीयादि विषम वर्ष के द्विरागम में सम्मुख का दोष नहीं होता है तथा भृगु – अंगिरा, वत्स, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, और भारद्वाज इन ७ मुनियों के वंश (अर्थात् गोत्र) में भी सम्मुख शुक्र का दोष नहीं लगता है। सम्प्रति तृतीयादि विषम वर्षों में द्विरागमन में शुक्र का विचार देश – काल परिस्थिति के अनुसार अनावश्यक प्रतीत होता है क्योंकि अब केवल शास्त्र मर्यादा का पालन ही शुक्र के लिए हैं। जब कन्या ११ वर्षकी अवस्था के भीतर व्याही जाती थी तो उसे उस समय शुक्र का उदय नहीं रहता था जो शुक्रदोष से प्रभावित होने का भय होता। अत: केवल द्विरागमन के समय शुक्र का विचार आवश्यक था ।

अपि च –

मधौवधूस्तातगृहे न तिष्ठेद्
आद्ये न भर्तुर्भवने वसेन्न।
न्यूनाधिमासे शुचिशुक्रपौषे
तिष्ठेद्यदानिष्ट फल प्रदिष्टा।।

विवाह के पश्चात् वधूप्रवेश के बाद पहले चैत्र में पिता के गृह में, पहले ज्येष्ठ में पतिगृह में न रहे। न्यूनाधिक मास में, पौष, ज्येष्ठ आषाढ़ में भी पतिगृह में नहीं रहना चाहिये। ऐसा होने पर अनिष्ट माना जाता है। वधूप्रवेश द्विरागमन आदि में गुरू – शुक्र की अस्ताविधि को अवश्य वर्जित करना चाहिये। द्विरागमन में सम्मुख व दायॉ शुक्र होना अशुभ होता है। उत्तर दिशा को

सम्मुख समझना चाहिए।

पाणिग्रहे राजभये नवीने वधूप्रवेशे प्रतिभार्गवो न ।
गर्भालसा बालसुता नवोढा नेयुर्भृगो: सम्मुखदक्षिणे च ।।

विवाह के पश्चात् वधूप्रवेश में, राजकीय उपद्रव में (आपत्तिकाल में), तीर्थयात्रा में, सम्मुख शुक्र दोष नहीं होता है।

गर्भवती या छोटे बच्चे वाली स्त्री ,नवेली दुल्हन जहॉ तक हो सके सम्मुख व दक्षिण शुक्र में पतिगृह में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

नवो भोग: पाणिग्रहणमथवा पौष्णकमृगै:।
प्रिय: प्रेष्ठो नार्या: करपवनमित्रार्यममघै:।।
भवेत्प्रीतिर्गाढा युवतिवरयोश्चेन्निर्ऋतिभे ।
तथा वैश्वे बुध्न्ये भवति युवतिर्नु: प्रियतरा ।।

प्रथम बार स्त्री संगम में , विवाह में रेवती, मृगशिरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, उ.फा., मघा, उ.षा. , उ.भा., नक्षत्र हो तो परस्पर प्रेम गहरा रहता है।

इन समस्त ध्यातव्य तथ्यों का अनुसरण अधिक से अधिक सुविधा, देशकाल परिस्थिति पात्र एवं संस्कार तथा परम्पराओं के अनुरूप करने से दाम्पतय जीवन उसी प्रकार से सहज रूपमय सुखमय, प्रेममय तथा आत्मीयता पूर्ण होता है। जिस प्रकार से भगवान विष्णु तथा माता लक्ष्मी का सुखमय वैवाहिक जीवन के विषय में विभिन्न पुराणों में वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न -

१. द्विरागमन करना चाहिये –

क. सम वर्षों में ख. विषम वर्षों में ग. दोनों में घ. कोई नहीं

२. द्विरागमन में कहॉ का शुक्र त्याज्य हैं –

क. सम्मुख और दक्षिण ख. वाम ग. पृष्ठ घ. दक्षिण

३. शुक्र प्रात:काल पूर्व में उदित कब होता है –

क. जब शुक्र सूर्य से पीछे रहता है।

ख. जब शुक्र सूर्य से आगे रहता है।

ग. जब सूर्य – शुक्र साथ – साथ होते हैं।

घ. कोई नहीं

४. करपीडन का अर्थ है –

क. द्विरागमन ख. वधूप्रवेश ग. विवाह घ. हस्त

५. कितने मुनियों के गोत्र या वंश में सम्मुख शुक्र दोष नहीं लगता है –

क. ५ ख. ६ ग. ७ घ. ८

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि गर्भिणी और बालक के यात्रा में तथा वधू के द्विरामन में सम्मुख और दक्षिण शुक्र त्याज्य है। रेवती से कृत्तिका प्रथम चरणपर्यन्त, मतांतर से मृगशिरा नक्षत्र पर्यन्त जब तक चन्द्रमा रहते हैं तब तक शुक्र अन्धा होता है। उपरोक्त कार्यों में अन्ध शुक्र सम्मुख और दाहिने शुभकर होता है। शुक्र यदि सम्मुख और दाहिने हो तो बालक – बालिका, नवविवाहिता, और गर्भवती स्त्री को यात्रा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शुक्र के सम्मुख और दाहिने रहने पर यदि बालक जाय तो बालक की मृत्यु हो जाती है। नवविवाहिता नवोढ़ा वन्ध्या हो जाती है और गर्भिणी का गर्भ नष्ट हो जाता है। इससे सिद्ध हो जाता है कि शुक्र के दक्षिण सम्मुख रहने पर किसी भी स्त्री का द्विरागमन शुभ नहीं है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

गुर्विण्या – गर्भिणी

विषम वर्ष – १,३,५,७,९ आदि वर्ष

द्वितीय – दूसरा

त्याज्य – छोड़ना

पृष्ठ – पीछे

सम्मुख – सामने

नवोढा – नव विवाहिता

भवति – होता है

भार्गव – शुक्र

इज – वृहस्पति

सम्प्रति – आजकल

अनावश्यक – जो आवश्यक न हो

द्विस्वभाव राशियॉ – मिथुन, कन्या, धनु, मीन

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. क
4. ग
5. ग

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वृहज्ज्योतिसार
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि
3. भारतीय ज्योतिष
4. वृहद्वकहड़ाचक्रम्

4.8 सहायक पाठ्सामग्री

1. विवाह वृन्दावन
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि - पीयूषधारा
3. मुहूर्त्तगणपति
4. मेलापक मीमांसा

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्विरागमन में शुक्र विचार को लिखिए।
2. शुक्र विचार पर विस्तृत लेख लिखिए ।